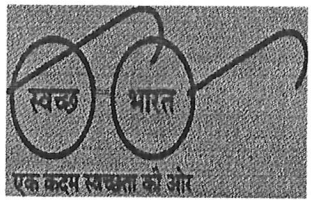

अगस्त, 2021
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक

श्री कमला कान्त
श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह

ISSN-2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2021 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2021 अंक - 8

प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक

असलम खान

(2021) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

प्रिय पाठकों ! अगस्त माह आते ही हमें स्वतंत्रता दिवस की याद आने लगती है । यूं तो हम प्रत्येक वर्ष 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस मनाते ही हैं किंतु इस बार आजादी का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है जिसकी यात्रा 12 मार्च, 2021 से आरंभ हो चुकी है जो 15 अगस्त, 2023 को आजादी की 75वीं वर्षगांठ के रूप में सम्पन्न होगी । इस अवसर पर यदि हम अपने देश के वीर जवान को याद न करें तो अन्याय होगा । भारतवर्ष की आजादी के अनमोल रत्नों में भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाकुल्ला खां का नाम सर्वोपरि है । इन छहों क्रांतिकारियों में आयु की दृष्टि से सबसे बड़े रामप्रसाद बिस्मिल थे जिनका जन्म 11 जून, 1897 को हुआ था और दूसरे स्थान पर अशफाकुल्ला खां का नाम आता है जिनका जन्म 22 अक्तूबर, 1900 को हुआ था । ये दोनों ही वीर हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के प्रभावी सदस्य थे और शाहजहांनपुर के मूल निवासी थे तथा "काकोरी ट्रेन रॉबरी काण्ड" के मुख्य आरोपी होने के साथ-साथ आपस में घनिष्ठ मित्र थे । जब कभी अशफाकुल्ला के घर में शायरी की बात चलती तो उनके बड़े भाई अपने साथ पढ़ने वाले रामप्रसाद बिस्मिल का जिक्र करना नहीं भूलते थे । उनके किस्से कहानियां सुनकर अशफाकुल्ला रामप्रसाद के फैन (प्रशंसक) हो गए । एक दिन अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचने में रामप्रसाद का नाम सामने आया जिसे मैनपुरी कांस्पिरेसी के नाम से जाना गया । अशफाकुल्ला भी यही चाहते थे कि भारत अंग्रेजों से मुक्त हो जाए, इसीलिए उन्होंने रामप्रसाद से मिलने की योजना बनाई । अशफाकुल्ला को पता चला कि किसी कार्यक्रम में रामप्रसाद भाषण देने आ रहे हैं, अत: वे उस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए और कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् अशफाकुल्ला ने अपना परिचय उनके मित्र के छोटे भाई के रूप में दिया और बताया कि मैं "हसरत" के नाम से शायरी करता हूं । यह सुनकर रामप्रसाद प्रभावित हुए और अंत में यह मुलाकात दोस्ती में बदल गई । रामप्रसाद बिस्मिल जाति से ब्राह्मण थे और अशफाकुल्ला मुस्लिम

थे किंतु दोनों ने दोस्ती के साथ देश के लिए मरमिटने की जो कसम खाई थी वह अंतिम समय तक निभाई गई । देश को अंग्रेजों से मुक्त कराने के लिए हथियारों की आवश्यकता थी और हथियार क्रय करने के लिए धन की । इसका समाधान निकालने के लिए इन दोनों वीरों ने ट्रेन में जा रहे सरकारी खजाने को लूटने की योजना बनाई जिसे आठ अन्य क्रांतिकारियों के साथ मिलकर 9 अगस्त, 1925 को देश हित के लिए काकोरी में अंजाम दिया गया । अंग्रेजी सरकार ने इन सभी वीरों को गिरफ्तार कर लिया और रामप्रसाद तथा अशफाकुल्ला के बीच धार्मिक भेदभाव को लेकर फूट डालने का प्रयास किया ताकि गोपनीय बातें सामने आ सकें किंतु इन दोनों ही वीरों ने एक-दूसरे पर अंत तक विश्वास बनाए रखा । अंग्रेजी सरकार ने काकोरी मुकदमे की सुनवाई के पश्चात् अशफाकुल्ला खां, रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लहरी और ठाकुर रोशन सिंह को मृत्युदंड घोषित किया । तारीख 19 दिसंबर, 1927 को ये सभी क्रांतिकारी वीर-रत्न फांसी के फंदे को चूमते हुए वीरगति को प्राप्त हो गए ।

इस अंक में केन्द्रीय अधिनियम मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अतिरिक्त अन्य ज्ञानवर्धक सामग्री भी है जिसका आप परिशीलन करें और अपने अमूल्य सुझावों से अवगत कराएं । यह अंक विधि-विद्यार्थियों, वकीलों, न्यायाधीशों, विधि-अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए पर्याप्त रूप से लाभकारी है ।

असलम खान
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2021

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
परियोजना निदेशक, राजस्थान सरकार, राजस्थान शहरी अवसंरचना विकास परियोजना **बनाम** मैसर्स इलेक्ट्रोस्टील कास्टिंग लिमिटेड कंपनी	256
रिंकी देवी और अन्य **बनाम** जमुना प्रसाद और अन्य	151
शंभू नाथ **बनाम** बिहार राज्य	188
शिव दाई और अन्य **बनाम** राय सिंह और एक अन्य	281
सुनेश सुधाकर रेले **बनाम** सीमा सुनेश रेले	240

संसद् के अधिनियम

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 30

उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 63 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65] – विल का निष्पादन – विल की मूल प्रति का उपलब्ध न होना – प्रत्यर्थी द्वारा द्वितीय साक्ष्य के रूप में विल की फोटो कॉपी प्रस्तुत किया जाना – लोक कार्यालय में भी मूल प्रति का न पाया जाना – यदि द्वितीय साक्ष्य युक्तियुक्त और तथ्यात्मक आधारों से समर्थित है तब उसे प्रस्तुत किया जा सकता है और इसके लिए न्यायालय में अलग से आवेदन करने की आवश्यकता नहीं है ।

शिव दाई और अन्य बनाम **राय सिंह और एक अन्य** 281

मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 (1994 का 42)

– धारा 10 [सपठित मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1995 का नियम 7(3), 10, 16 और 23] – वृक्क का प्रतिरोपण – अस्पताल द्वारा वृक्क प्रतिरोपण से इनकार किया जाना – अंग दाता का निकट नातेदार न होना – ऐसी किसी भी सामग्री के अभाव में कि दाता ने अंग के संदान की सहमति दबाव में आकर दी है, दाता के संदान के अधिकार को प्रतिषिद्ध नहीं किया जा सकता और प्राधिकार समिति, दाता और प्राप्तिकर्ता के प्रतिरूपण संबंधी संयुक्त आवेदन को सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है और प्राधिकार समिति को यह मूल्यांकन करना होगा कि अंग दाता, अंग का संदान प्राप्तिकर्ता के साथ केवल स्नेह और लगाव के आधार पर कर रहा है और यह कि उनके बीच किसी भी

पृष्ठ संख्या

प्रकार का कोई वाणिज्यिक संव्यवहार भी नहीं किया गया है ।

शंभू नाथ बनाम **बिहार राज्य** 188

– धारा 10 [सपठित मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1995 का नियम 7(3), 16 और 23] – वृक्क का प्रतिरोपण – प्रतिरोपण के लिए अंगदान करने हेतु जीवित व्यक्ति का अधिकार – यदि कोई व्यक्ति स्वस्थचित्त है और आयु की दृष्टि से सक्षम है और किसी असम्यक् दबाव में नहीं है तब उसकी अंग दान करने हेतु प्राधिकार देने की इच्छा सर्वोपरि है ।

शंभू नाथ बनाम **बिहार राज्य** 188

– धारा 10 – मस्तिष्क-मृत्यु – रोगोपचार की जानकारी – अंग संदान किए जाने हेतु दाताओं का प्रोत्साहित किया जाना – रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसाय का यह कर्तव्य है कि वह मृतक के निकट नातेदार को जिसकी मस्तिष्क मृत्यु हो चुकी है इस बात से अवगत कराएं कि उसको यह विकल्प उपलब्ध है कि वह रोगोपचार के लिए मृतक के शरीर से मानव अंग निकाले जाने को प्राधिकृत कर सकता है ।

शंभू नाथ बनाम **बिहार राज्य** 188

मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1995

– नियम 33 – अंग दाता की चिकित्सीय जांच – जैविक क्षमता और अनुकूलता – यदि प्रस्तावित दाता को अंग का संदान करना है तो उसे सभी चिकित्सा परीक्षण सुसंगत प्रक्रमों पर कराने होंगे ताकि अनुसंधान

पृष्ठ संख्या

के लिए उसकी जैविक क्षमता और अनुकूलता सुनिश्चित की जा सके और दाता की शारीरिक एवं मानसिक जांच भी की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि उसका स्वास्थ्य ठीक है या नहीं और यह कि वह मानसिक रोग से ग्रसित तो नहीं है ।

शंभू नाथ बनाम **बिहार राज्य** 188

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 168, 169 और 176 – मृतक की पत्नी और अन्य विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिकर के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन – आवेदन खारिज – प्रथम अपील – प्रतिकर का निर्धारण – उल्लंघनकारी यान के अंतर्वलित न होने का कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना – उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाया जाना – दावेदारों द्वारा मृतक की आय का कोई सबूत पेश न किया जाना – बीमा कंपनी के अन्वेषक द्वारा मृतक की मासिक आय का उचित पाया जाना – बीमा अन्वेषक की रिपोर्ट में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया जिससे उल्लंघनकारी यान द्वारा कारित अभिकथित दुर्घटना में कोई संदेह उत्पन्न होता हो साथ ही उसने यह भी सत्यापित किया है कि 69,808/- रुपए मृतक के उपचार में खर्चों के रूप में उपगत हुए हैं और दुर्घटना के समय यान बीमाकृत था इसलिए, बीमा कंपनी 70 हज़ार रुपए प्रतिकर देने के लिए बाध्य है, अतः निचले न्यायालय का निर्णय न्यायोचित नहीं है ।

रिंकी देवी और अन्य बनाम **जमुना प्रसाद और अन्य** 151

पृष्ठ संख्या

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43)

– धारा 27(घ) – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा पति के प्रति मानसिक क्रूरता – पत्नी द्वारा पति को बताया जाना कि अपीलार्थी के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किया गया है – पत्नी द्वारा पति और उसके परिजनों को गालियां और मारपीट की धमकी दिया जाना – पत्नी द्वारा यह साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना कि पति के कारण उसका गर्भपात हुआ है – पत्नी का प्रेमप्रसंग और जारता में पाया जाना – प्रत्यर्थी पत्नी का पति और उसके परिजनों के साथ गाली-गलौज करना और अन्य किसी व्यक्ति के साथ जारता की दशा में रहने को जीवन की छोटी-मोटी नोक-झोंक नहीं माना जा सकता और ऐसा करना वैवाहिक अपचार तथा क्रूरता की कोटि में आता है जिसके आधार पर पति विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है और निचले न्यायालय का निर्णय न्यायोचित नहीं है ।

सुनेश सुधाकर रेले बनाम **सीमा सुनेश रेले** 240

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 151 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 13, 14 और 15] – याचियों द्वारा पुनर्विचार याचिका के माध्यम से चुनौती दिया जाना – अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन मध्यस्थ के रूप में न्यायमूर्ति श्री महेश चंद शर्मा (सेवानिवृत्त) को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाना – ब्याज की राशि का पुनर्निर्धारण किया जाना और साथ ही मध्यस्थ की फीस का भी बढ़ाया जाना – मध्यस्थ की फीस अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (14)

पृष्ठ संख्या

के अधीन पुनर्निर्धारित की गई है और याची माध्यस्थम् की कार्यवाही में लगातार भाग लेते रहे हैं जिससे स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि याचियों ने निचले न्यायालय के समक्ष शुल्क के पुनर्निर्धारण सम्बन्धी एकल मध्यस्थ के आदेशों को चुनौती, मामले की सुनवाई के अंतिम चरण में दी है जोकि न्यायोचित नहीं है और उन्हें ऐसा करने से रोका जाता है ।

परियोजना निदेशक, राजस्थान सरकार, राजस्थान शहरी अवसंरचना विकास परियोजना बनाम **मैसर्स इलेक्ट्रोस्टील कास्टिंग लिमिटेड कंपनी** 256

(2021) 2 सि. नि. प. 151 इलाहाबाद

रिंकी देवी और अन्य

बनाम

जमुना प्रसाद और अन्य

(2017 की प्रथम अपील सं. 3313)

तारीख 5 सितम्बर, 2019

न्यायमूर्ति वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 168, 169 और 176 – मृतक की पत्नी और अन्य विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिकर के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन – आवेदन खारिज – प्रथम अपील – प्रतिकर का निर्धारण – उल्लंघनकारी यान के अंतर्वलित न होने का कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना – उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाया जाना – दावेदारों द्वारा मृतक की आय का कोई सबूत पेश न किया जाना – बीमा कंपनी के अन्वेषक द्वारा मृतक की मासिक आय का उचित पाया जाना – बीमा अन्वेषक की रिपोर्ट में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया जिससे उल्लंघनकारी यान द्वारा कारित अभिकथित दुर्घटना में कोई संदेह उत्पन्न होता हो साथ ही उसने यह भी सत्यापित किया है कि 69,808/- रुपए मृतक के उपचार में खर्चों के रूप में उपगत हुए हैं और दुर्घटना के समय यान बीमाकृत था इसलिए, बीमा कंपनी 70 हज़ार रुपए प्रतिकर देने के लिए बाध्य है, अतः निचले न्यायालय का निर्णय न्यायोचित नहीं है ।

इस अपील में उद्भूत संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक राज पाल पुत्र श्री नत्थू लाल जो दावेदार सं. 1 श्रीमती रिंकी देवी (निवासी राम नगर कालोनी, साउथ, पुलिस थाना कटरा बाजार, जिला शाहजहांपुर)

का पति है, अपने घर से तारीख 22 मार्च, 2016 को सायं 3.00 बजे कटरा बाज़ार के लिए रवाना हुआ । जब वह जलालाबाद मार्ग पर मोहल्ला राम नगर कालोनी से होकर जा रहा था तब एक कार मारुति वैगन-आर सं. यू.पी. 74 के 8724 जिसे मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक रूप से चला रहा था, पीछे से आई और मृतक राज पाल को टक्कर मारी जिसके परिणामस्वरूप उसको सिर और टांगों में बहुत-सी क्षतियां कारित हुईं । मृतक राज पाल को उपचार के लिए बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल ले जाया गया । श्रीमती रिंकी देवी (दावेदार सं. 1) द्वारा तारीख 29 मार्च, 2016 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई और उक्त दुर्घटना में पहुंची क्षतियों के कारण तारीख 31 मार्च, 2016 को उपचार के दौरान मृतक की मृत्यु हो गई । दावेदारों द्वारा, उपरोक्त कार के चालक मान सिंह और प्रत्यर्थी सं. 3, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी (बीमाकर्ता) के विरुद्ध 24,90,000/- रुपए की राशि के प्रतिकर के लिए अधिकरण के समक्ष दावा-आवेदन फाइल किया गया । अधिकरण ने दावेदारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उपरोक्त अधिनिर्णय और आदेश द्वारा याचिका खारिज कर दी । उपरोक्त आक्षेपित आदेश और निर्णय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि प्रतिकर अवधारण करने की प्रक्रिया एक जांच है, इसलिए दांडिक विचारण और सिविल वाद जैसी प्रक्रियाओं में लागू विधि के सिद्धांत ऐसी कार्यवाही में लागू नहीं होंगे । इसमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दुर्घटना कारित करने के बाद यान का चालक अत्यंत गंभीर स्थिति में क्षतिग्रस्त व्यक्ति को छोड़कर घटनास्थल से भागने का प्रयत्न करता है । ऐसी स्थिति में राहगीर और दर्शक उसकी सहायता के लिए आते हैं । वे उल्लंघनकारी यान का पीछा करने का प्रयत्न करते हैं और उसका रजिस्ट्रेशन संख्या लिखते हैं और उल्लंघनकारी यान के चालक को पकड़ने का भी प्रयत्न करते हैं तथा दावेदार/इत्तिलाकर्ता या घटनास्थल पर उपलब्ध व्यक्ति को इसकी जानकारी देते हैं । यह भी देखा गया है कि कुछ मामलों में न्यायालय में उपस्थित होने या पुलिस

द्वारा की जाने वाली जांच से बचने के लिए प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अपने नाम नहीं बताते हैं । उपरोक्त स्थिति में सरकार द्वारा विरचित नियमों के अधीन स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और जांच अधिकारी द्वारा तैयार किए गए कतिपय दस्तावेज, घटनास्थल के फोटो तथा दुर्घटना संबंधी स्थल नक्शा, जब तक कि प्रतिकूल साबित न किया जाए, औपचारिक सबूत के बिना पढ़े जाएंगे । इस प्रकार, इस सम्बन्ध में विधि सुस्थिर है कि मोटर दुर्घटना के कारण दिए जाने वाले प्रतिकर से संबंधित विधि, एक हितकारी विधान है । चालक की उपेक्षा या उल्लंघनकारी यान के अंतर्वलित होने की अवधारण करने में साक्ष्य का ठोस सबूत अपेक्षित नहीं है । दुर्घटना दावा मामले में साक्ष्य की जांच करने का मानक, संभाव्यता की प्रबलता पर आधारित है । ऐसे मामले में, अभिकथित यान के प्रथमदृष्ट्या अंतर्वलित होने का साक्ष्य ही पर्याप्त होता है । इस प्रकार यह देखना होगा कि अभिलेख पर प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य उपलब्ध है या नहीं जिसके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि अभिकथित दुर्घटना तारिख 22 मार्च, 2016 को सायं 3 बजे पुलिस थाना कटरा, जिला शाहजहांपुर, जलालाबाद रोड पर मोहल्ला राम नगर कालोनी के निकट घटित हुई थी जिसमें मृतक राज पाल को बहुत सी क्षतियां पहुंची थीं और बाद में तारीख 31 मार्च, 2016 को उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई । आक्षेपित अधिनिर्णय का परिशीलन करने से, यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान् अधिकरण ने दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ऋषि पाल (अभि. सा. 2) जो मृतक का सगा साला है, के एकमात्र परिसाक्ष्य का अवलंब नहीं लिया क्योंकि दुर्घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति स्वाभाविक नहीं थी ; और उसके अनुसार मृतक को अस्पताल में पुलिस द्वारा भर्ती कराया गया था और पुलिस रिपोर्ट से उसके कथन की पुष्टि नहीं होती है ; मृतक को जिला शांहजहांपुर के किसी भी अस्पताल में उपचार के लिए भर्ती नहीं कराया और क्षति-रिपोर्ट, स्थल नक्शा और शव-परीक्षा रिपोर्ट से ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के कथन की पुष्टि नहीं होती है क्योंकि मृत्युपूर्व मृतक के सिर पर क्षतियों के चिह्न नहीं मिले थे । यह विधि का सुस्थिर

सिद्धांत है कि यदि घटनास्थल पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की उपस्थिति साबित हो जाती है और उसका कथन विश्वसनीय पाया जाता है तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने में हुए विलंब ; पुलिस दस्तावेजों में आई कमी, चिकित्सीय साक्ष्य में पाए गए किसी दोष और अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के प्रस्तुत न किए जाने जैसी बातें उक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य के मूल्यांकन में महत्वहीन होंगी । रिंकी देवी (अभि. सा. 1) कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । ऋषि पाल (अभि. सा. 2) को घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में दावेदारों द्वारा पेश किया गया है । इस प्रकार यह देखा जाना है कि दुर्घटना स्थल पर ऋषि पाल (अभि. सा. 2) की उपस्थिति साबित हुई है या नहीं और उसका कथन विश्वसनीय है या नहीं । वह जिला बरेली के पुलिस थाना-फरीदपुर के ग्राम-ईसूरा का निवासी है क्योंकि अभिकथित दुर्घटना जिला शाहजहांपुर के पुलिस थाना कटरा बाजार, जलालाबाद रोड, मोहल्ला राम नगर कालोनी में घटित हुई थी । वह मृतक राज पाल का सगा साला हैं । उसके अनुसार दुर्घटना के समय, वह मटका (होली त्यौहार की पूर्वसंध्या पर मनाया जाने वाला एक रिवाज) में शामिल होने मृतक के घर जा रहा था । जैसे ही वह कटरा बाजार चौराहे से जलालाबाद मार्ग होते हुए अपनी ससुराल की ओर बढ़ा और चौराहे से 200 मीटर दूर पहुंचा तो उसने देखा कि उसका साला बाजार के लिए कटरा चौराहे की ओर पैदल आ रहा था और वह उससे 50 मीटर की दूरी पर था, तभी सफेद रंग की मारुति वैगन आर कार सं. यू.पी. 74 के 8724, के चालक ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए पीछे से राज पाल को टक्कर मारी और चालक दुर्घटना स्थल से भाग गया । प्रतिपरीक्षा में, उसने स्वीकार किया कि दुर्घटना स्थल पर भीड़ एकत्रित हो गई थी और एक अज्ञात व्यक्ति ने पुलिस को फोन किया, तत्पश्चात् पुलिस वहां पहुंची । उसने आगे यह कथन किया है कि मृतक को पुलिस द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया गया । उसने यह भी स्वीकार किया कि कथित दुर्घटना जयनारायण के घर के सामने घटित हुई थी । उसके अनुसार, सड़क पर जहां दुर्घटना हुई थी वह पश्चिम से दक्षिण की ओर जाती है और दुर्घटना सड़क के पश्चिम दिशा में घटित हुई ।

प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया कि वह कटरा बाजार में किसी अस्पताल में मृतक राज पाल को नहीं ले गया, परंतु उसने विशिष्ट रूप से यह कथन किया कि उसने उल्लंघनकारी यान का रजिस्ट्रेशन नंबर आगे और पीछे दोनो तरफ से देखा था । उसने आगे यह कथन किया कि वह मृतक को पुलिस के साथ बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल की एबुलेंस में ले गया । रिंकी देवी (अभि. सा. 1) ने भी यह कथन किया कि मृतक को पुलिस और ऋषि पाल (अभि. सा. 2) द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया था । इस मामले में, दुर्घटना की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दुर्घटना से 8-9 दिन बाद दर्ज कराई गई थी जिसमें विशिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि कथित दुर्घटना को वीरेश कुमार मिश्रा और ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने देखा था । यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि केवल इस आधार पर कि साक्षी मृतक या इत्तिलकर्ता के नातेदार हैं, उनके परिसाक्ष्यों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता । यदि विरोधी पक्षकारों अर्थात् उल्लंघनकारी यान के चालक, स्वामी और बीमाकर्ता ने यान के दुर्घटना में अंतर्वलित न होने के संबंध में अभिकथन किया है तो वह तर्कपूर्ण साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए जबकि दावेदारों द्वारा यह साबित किया गया है कि मृतक की मृत्यु उल्लंघनकारी यान से ही कारित हुई थी । मृत्यु सूचना रिपोर्ट सिद्ध विनायक अस्पताल से जिला बरेली के पुलिस थाना कोतवाली के निरीक्षक को भेजी गई थी जिसमें यह दर्शाया गया था कि मृतक राज पाल को एंबुलेंस की सहायता से भर्ती कराया गया था । इस दस्तावेज को दावेदारों द्वारा फाइल किया गया है जिसमें यह उल्लिखित किया गया है कि मृतक राज पाल को तारीख 22 मार्च, 2016 को दोपहर 3.10 बजे अचेत अवस्था में अस्पताल में भर्ती कराया गया था और तारीख 31 मार्च, 2016 को सायं 6.00 बजे जलालाबाद मार्ग पर कारित दुर्घटना में सिर और दोनों टांगों में गंभीर क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । यद्यपि घटित दुर्घटना के स्थल नक्शे में, साक्षी की उपस्थिति दर्शाई नहीं गई है किन्तु इस दस्तावेज के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभिकथित दुर्घटना मार्ग के पश्चिम दिशा में घटित हुई थी और मृतक को टक्कर पीछे से

लगी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उपरोक्त यान का रजिस्ट्रेशन नंबर का उल्लेख विशिष्ट रूप से किया गया है और अन्वेषण के पश्चात् उपरोक्त कार के चालक मानसिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 338 और 304क के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया था । न तो मृतक राज पाल के साले ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने और न ही मृतक की पत्नी रिंकी देवी अभि. सा. 1 ने यह अभिकथन किया है कि सिद्ध विनायक अस्पताल घटनास्थल से 70-80 किलोमीटर दूरी पर स्थित है परन्तु अधिकरण ने अभिलेख पर गैर-अपीलार्थी अर्थात् बीमाकर्ता, चालक या स्वामी के साक्ष्य के बिना अन्य किसी साक्ष्य से इस तथ्य को अभिलिखित किया है कि बरेली घटनास्थल से 70-80 किलोमीटर दूर है । शाहजहांपुर और बरेली निकटवर्ती जिले हैं । बीमा कंपनी द्वारा अधिकरण के समक्ष न तो रिंकी देवी (अभि. सा. 1) और न ही ऋषि पाल (अभि. सा. 2) की प्रतिपरीक्षा इस बिन्दु पर कराई गई कि क्या मृतक को बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल में उपचार के लिए भर्ती कराया गया था । अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि मृतक राज पाल दुर्घटना के समय नाजुक स्थिति में था । इस प्रकार यदि पुलिस की सलाह पर सहायता करने वाली एंबुलेंस से उत्तम उपचार के लिए मृतक को बरेली के सिद्धि विनायक अस्पताल में ले जाया गया था और ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने विरोध नहीं किया था तो इस आधार पर उसका साक्ष्य अविश्वसनीय नहीं समझा जा सकता । मेरी राय में, ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के साक्ष्य की अविश्वसनीयता के संबंध में विद्वान् अधिकरण द्वारा इस आधार पर निकाला गया निष्कर्ष कि पुलिस ने बरेली के अस्पताल में मृतक को भर्ती कराया था या ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने शाहजहांपुर में किसी भी अस्पताल में मृतक को भर्ती नहीं कराया था या पुलिस ने इस बात से इनकार किया कि बरेली के अस्पताल में मृतक को भर्ती कराने में ऋषि पाल (अभि. सा. 2) की कोई भूमिका थी जैसी बातें इस दुर्घटना दावा आवेदन में न्यायसंगत नहीं है क्योंकि अनियमितताएं या असंगतताएं इस मामलें के तथ्यों और परिस्थितियों में या तो पृष्ठीय या सारहीन हैं । इस परिस्थिति में यह

उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अधिकरण ने दावेदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया है क्योंकि मृतक की क्षति रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की थी और शव-परीक्षा रिपोर्ट में मृत्यु पूर्व की क्षतियां मृतक के सिर पर नहीं पाई गईं चूंकि ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के अनुसार अभिकथित दुर्घटना में मृतक के सिर में क्षतियां पहुंची थीं । अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि अभिकथित दुर्घटना में कारित अनेकों क्षतियों के कारण, मृतक राज पाल की स्थिति दुर्घटना के समय नाजुक थी, इसलिए मेरी राय में यदि मृतक को किसी सरकारी अस्पताल में नहीं ले जाया गया था और क्षति रिपोर्ट न तो तैयार की गई थी और न ही अधिकरण के समक्ष फाइल की गई थी, इन बातों से दावेदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की सत्यनिष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । जहां तक शव-परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार सिर में मृत्युपूर्व क्षति के पाए जाने का संबंध है, शव-परीक्षा रिपोर्ट के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मृत्युपूर्व तीन क्षतियों का उल्लेख शव-परीक्षा रिपोर्ट में किया गया है जिसमें क्षति सं. 1 में 3 सें. मी. से 2 सें. मी. के घाव में टाके लगाए गए हैं और क्षति सं. 2 में 3 सें. मी. के घाव में टांके लगाए गए हैं और ये दोनों क्षतियां दाईं आंख की भौंह के ऊपर पाई गई हैं जबकि क्षति सं. 3 के अनुसार दोनों टांगों में अस्थिभंग पाया गया है । इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेख किया गया है कि मृतक के मस्तिष्क में रक्तपूतिता पाई गई है और शव-परीक्षा रिपोर्ट में दिए गए राय के कॉलम में, मृत्यु के कारण और रीति से संबंधित विशिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि मृतक की मृत्यु, मृत्युपूर्व सिर पर आई क्षति के कारण हुई है । इस प्रकार, अधिकरण द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि शव-परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार सिर में कोई क्षति कारित नहीं हुई या यह कि क्षति रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है । अभिलेख के परिशीलन करने से यह भी प्रकट होता है कि उल्लघंनकारी यान के पंजीकरण प्रमाणपत्र, बीमा पॉलिसी और मानसिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) के चालन अनुज्ञप्ति की प्रतियां ही प्रत्यर्थी-स्वामी द्वारा फाइल की गई थीं और दुर्घटना अन्वेषण रिपोर्ट की

प्रति प्रत्यर्थी बीमा कंपनी के अन्वेषक द्वारा फाइल की गई थी जिसमें 69,808/- रुपए मृतक के उपचार में उपगत खर्चों के रूप में सत्यापित किए गए । इस रिपोर्ट में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया जिससे उल्लंघनकारी यान द्वारा कारित अभिकथित दुर्घटना में कोई संदेह उत्पन्न होता हो । ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रत्यर्थी स्वामी, अभिकथित यान के चालक या बीमाकर्ता द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे दावेदारों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी और प्रत्यक्ष साक्ष्य का खंडन किया जा सके । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह मत है कि अभिकथित दुर्घटना तारीख, 22 मार्च, 2016 को सायं 3 बजे उल्लंघनकारी यान सं. यू.पी. 74 के 8724 के चालक के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण घटित हुई थी जिसमें मृतक राज पाल को बहुत सी क्षतियां पहुंची थीं और उपचार के दौरान 31 मार्च, 2016 को उसकी मृत्यु हो गई थी । इस मामले में विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधि के सुस्थापित सिद्धांत और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री के विरुद्ध है । जहां तक प्रतिकर के अवधारण या संदाय के दायित्व से संबंधित प्रश्न है, दावा आवेदन में मृतक पर आश्रितों की संख्या छह दर्शाई गई है । अपीलार्थी/दावेदार सं. 1, मृतक की पत्नी है और अन्य पांच दावेदार मृतक के बच्चे हैं । दुर्घटना के समय पर मृतक की आयु 40 वर्ष दर्शाई गई है, जो शव-परीक्षा रिपोर्ट और अभिलेख पर उपलब्ध मृतक की मत्यु सूचना रिपोर्ट से भी सत्यापित है । इस प्रकार, गुणांक के अवधारण के प्रयोजनार्थ, मृतक की आयु 40 वर्ष से 50 वर्ष अवधारित की गई है । दावा-आवेदन में, मृतक की मासिक आय प्रतिमास 15,000/- रुपए अभिकथित की गई है और उसका व्यवसाय राजमिस्त्री के रूप में दर्शाया गया है किन्तु इस संबंध में दावेदारों द्वारा कोई दस्तावेजी सबूत प्रस्तुत नहीं किए गए हैं । मृतक की पत्नी अर्थात् श्रीमती रिंकी देवी (अभि. सा. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिकथित किया है कि उसका पति राजमिस्त्री के रूप में श्रमिक का कार्य किया करता था परन्तु वह इसे नियमित रूप से नहीं करता था । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, दावेदारों द्वारा मृतक की आय के संबंध में,

कोई दस्तावेजी सबूत अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है और मृतक ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित एक अकुशल श्रमिक था इसलिए उसकी मासिक आय 3,000/- रुपए निर्धारित की गई है । उपरोक्त के अतिरिक्त, मृतक को तारीख 22 मार्च, 2016 को बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल में उपचार के लिए भर्ती कराया गया था जहां उसका उपचार तारीख 31 मार्च, 2016 तक अर्थात् उसकी मृत्यु होने तक निरंतर चला था । मृतक के उपचार पर हुए खर्च की राशि के अनेक बिल वाऊचर दावेदारों द्वारा फाइल किए गए हैं जो निचले न्यायालय के अभिलेख पर उपलब्ध हैं । दावा याचिका में, यह विशिष्ट रूप से अभिकथित किया गया है कि मृतक के उपचार पर 10,000/- रुपए की राशि खर्च हुई थी । उक्त बिल वाऊचरों को दावेदारों द्वारा प्राधिकृत रूप से साबित नहीं किया गया है, परंतु उसे बीमाकर्ता द्वारा नियुक्त किए गए अन्वेषक की सत्यापन रिपोर्ट के आधार पर प्रत्यर्थी बीमाकर्ता द्वारा सत्यापित किया गया है । इस रिपोर्ट में 69,808/- रुपए के बिल वाऊचर सत्यापित किए गए और उक्त अन्वेषक द्वारा इसे सत्य पाया गया है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दावेदार चिकित्सा खर्चे के रूप में 70,000/- रुपए के हकदार हैं । जहां तक उपरोक्त प्रतिकर पर ब्याज का संबंध है, यह सुस्थिर किया गया है कि प्रतिकर पर संदत्त वार्षिक ब्याज प्रबल मूल्य सूचकांक और बैंक ब्याज की दर से होना चाहिए । इस प्रकार वर्तमान मूल्य सूचकांक और जमा राशि पर बैंक ब्याज की दर देखते हुए, दवेदार दावा आवेदन के फाइल करने की तारीख से उपरोक्त प्रतिकर पर 8 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के हकदार हैं । जहां तक उपरोक्त प्रतिकर के संदाय के दायित्व का संबंध है, जमुना प्रसाद (प्रत्यर्थी सं. 1) उल्लंघनकारी यान सं. यू. पी. 74 के 8724 का स्वामी है ; मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) दुर्घटना के समय पर उल्लंघनकारी यान का चालक था क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 3 को उक्त यान का बीमाकर्ता के रूप में दर्शाया गया है और अधिकथित दुर्घटना, जिसमें मृतक राज पाल की मृत्यु हुई थी, तारीख 22 मार्च, 2016 को घटित हुई थी । अधिकरण के समक्ष जमुना प्रसाद (प्रत्यर्थी सं. 1) द्वारा फाइल किए गए दस्तावेज सं. 22जी से 24जी का

परिशीलन करने से, यह प्रतीत होता है कि उक्त उल्लंघनकारी यान हल्का मोटर यान (कार) है, जो जमुना प्रसाद के नाम में रजिस्ट्रीकृत है और तारीख 31 अक्तूबर, 2015 से 30 अक्तूबर, 2016 तक प्रत्यर्थी सं. 3 बीमा कम्पनी द्वारा बीमाकृत है । मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) की चालन अनुज्ञप्ति तारीख 15 सितम्बर, 2012 को जारी हुई थी, जो तारीख 22 मई, 2017 तक विधिमान्य थी । उक्त चालन अनुज्ञप्ति को कानपुर के क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (आर.टी.ओ) को सत्यापन के लिए भी भेजी गई थी जिसमें उनके तारीख 11 जुलाई, 2017 के पत्र द्वारा (अभिलेख पर उपलब्ध) जानकारी दी गई है कि अभिलेख के अनुसार, चालन अनुज्ञप्ति मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) के पक्ष में मोटरसाइकिल और हल्के मोटर यान अर्थात् कार के लिए जारी की गई थी जो तारीख 15 सितम्बर, 2012 से 3 जुलाई, 2016 तक विधिमान्य और प्रभावी थी । इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अधिकथित यान के सभी दस्तावेज चालन अनुज्ञप्ति सहित विधिमान्य और प्रभावित थे और उक्त यान दुर्घटना के समय प्रत्यर्थी सं. 3 से बीमाकृत था । यद्पि प्रतिकर के संदाय का प्राथमिक दायित्व प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 पर डाला गया जो उल्लंघनकारी यान के स्वामी और चालक थे किंतु दुर्घटना के समय उक्त यान प्रत्यर्थी सं. 3 बीमाकर्ता से बीमाकृत था और इसमें पॉलिसी भी भंग नहीं हुई इसलिए ब्याज के साथ उपरोक्त प्रतिकर के संदाय का वास्तविक दायित्व प्रत्यर्थी सं. 3 (बीमाकर्ता) पर डाला गया है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड (प्रत्यर्थी सं. 3) को इस निर्णय की प्रति के प्राप्त होने की तारीख से एक मास की अवधि के भीतर अधिकरण के समक्ष दावा आवेदन की तारीख से 8 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 6,44,000/- रुपए (छह लाख चवालीस हजार रुपए) अधिकरण के समक्ष जमा करेगा । इस राशि में से दावेदार सं. 2 से 6 तक प्रत्येक को एक-एक लाख रुपए का संदाय किया जाएगा जो उनके वयस्यक होने तक किसी राष्ट्रीयकरण बैंक में जमा रहेगी । प्रतिकर की शेष राशि उपरोक्त संपूर्ण धनराशि पर उपार्जित ब्याज के साथ अपीलार्थी सं. 1 को संदत्त की जाएगी । उपरोक्त चर्चा को ध्यान

में रखते हुए, अधिकरण द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2017 का आक्षेपित आदेश और अधिनिर्णय एतदद्वारा अपास्त किया जाता है । अपील मंजूर की जाती है और दावेदारों द्वारा फाइल किया गया आवेदन यथाउल्लिखित ब्याज के साथ उपरोक्त सीमा तक प्रतिकर के रूप में मंजूर किया जाता है । (पैरा 10, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 38, 39, 40, 41, 42 और 43)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] (2017) 16 एस. सी. सी. 680 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** ; 34

[2015] (2015) 9 एस. सी. सी. 166 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **पुष्पा** ; 34

[2015] (2015) 6 एस. सी. सी. 347 :
मुन्ना लाल जैन बनाम **विपिन कुमार शर्मा** ; 34

[2013] (2013) 14 एस. सी. सी. 345 :
बिमला देवी बनाम **सतबीर सिंह** ; 14

[2012] (2012) 6 एस. सी. सी. 421 :
संतोष देवी बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** ; 34

[2011] 2011 ए. सी. जे. 926 (एस. सी.) :
कुसुम लता बनाम **सतबीर** ; 13

[2009] (2009) 6 एस. सी. सी. 121 :
सरला वर्मा बनाम **दिल्ली परिवहन निगम** ; 34

[2009] (2009) 13 एस. सी. सी. 530 :
बिमला देवी बनाम **हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य** ; 12

[2009] (2009) 13 एस. सी. सी. 422 :
रेशमा कुमारी बनाम **मदन मोहन** ; 34

[2009] (2009) 13 एस. सी. सी. 54 :
राजेश बनाम **राजबीर सिंह** ; 34

[1996] (1996) 4 एस. सी. सी. 362 :
उत्तर प्रदेश सड़क परिवहन निगम बनाम
त्रिलोक चन्द्र ; 34

[1980] (1996) ए. सी. जे. 435 (एस. सी.) :
एन. के. वी. ब्रदर्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम **एम. करुमाई अमाल** । 11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की प्रथम अपील सं. 3313.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री कुलदीप कुमार दीक्षित और श्री प्रेम प्रकाश

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ओम प्रकाश मिश्रा और श्री अतुल पाण्डेय

न्यायमूर्ति वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव – यह प्रथम अपील 2016 के मोटर दावा दुर्घटना आवेदन सं. 172 (श्रीमती रिंकी देवी और अन्य बनाम जमुना प्रसाद और अन्य) में अपर जिला न्यायाधीश, मोटर दावा दुर्घटना अधिकरण, शाहजहांपुर (न्यायालय सं. 6) के (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा पारित तारीख 31 अगस्त, 2017 के अधिनिर्णय और आदेश के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) के अधीन फाइल की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी-दावेदार (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "दावेदार" कहा गया है) द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया गया ।

2. इस अपील में उद्भूत संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक राज पाल पुत्र श्री नत्थू लाल जो दावेदार सं. 1 श्रीमती रिंकी देवी (निवासी राम नगर कालोनी, साउथ, पुलिस थाना कटरा बाजार, जिला शाहजहांपुर) का पति है, अपने घर से तारीख 22 मार्च, 2016 को सायं 3.00 बजे कटरा बाज़ार के लिए रवाना हुआ । जब वह जलालाबाद मार्ग पर मोहल्ला राम नगर कालोनी से होकर जा रहा था तब एक कार मारुति वैगन-आर सं. यू.पी. 74 के 8724 जिसे मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक रूप से चला रहा था, पीछे से आई और मृतक राज पाल को टक्कर मारी जिसके परिणामस्वरूप उसको सिर और टांगों में बहुत-सी क्षतियां कारित हुईं । मृतक राज पाल को उपचार के लिए बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल ले जाया गया । श्रीमती रिंकी देवी (दावेदार सं. 1) द्वारा तारीख 29 मार्च, 2016 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई और उक्त दुर्घटना में पहुंची क्षतियों के कारण तारीख 31 मार्च, 2016 को उपचार के दौरान मृतक की मृत्यु हो गई ।

3. दावेदारों द्वारा, उपरोक्त कार के चालक मान सिंह और प्रत्यर्थी सं. 3, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी (बीमाकर्ता) के विरुद्ध 24,90,000/- रुपए की राशि के प्रतिकर के लिए अधिकरण के समक्ष दावा-आवेदन फाइल किया गया । अधिकरण ने दावेदारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उपरोक्त अधिनिर्णय और आदेश द्वारा याचिका खारिज कर दी । उपरोक्त आक्षेपित आदेश और निर्णय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की गई ।

4. दावेदारों के विद्वान् काउंसेल श्री प्रेम प्रकाश, प्रत्यर्थी सं. 1 औऱ 2 के विद्वान् काउंसेल श्री अतुल पाण्डेय और प्रत्यर्थी सं. 3 के विद्वान् काउंसेल श्री ओम प्रकाश मिश्रा को सुना गया है ।

5. दावेदार के विद्वान् काउंसेल ने यह दलीलें दी हैं कि अभिकथित दुर्घटना वैगन-आर कार सं. यू.पी. 74 के 8724 को प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए घटी है जिसमें मृतक राज पाल को बहुत-सी क्षतियां पहुंचीं और बाद में तारीख 31 मार्च, 2016 को उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई । दुर्घटना स्थल शाहजहांपुर और

बरेली दोनों जिलों के मुख्यालय के मध्य था । मृतक को उत्तम उपचार के लिए सिद्ध विनायक अस्पताल, बरेली में भर्ती कराया गया था । अधिकरण ने अपना न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना, दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत अभिलेख पर साक्ष्यों को अनुचित और अवैध अभिनिर्धारित किया क्योंकि अधिकथित यान का अंतर्वलन रिंकी देवी (अभि. सा. 1), ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के मौखिक साक्ष्य से ही नहीं अपितु दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, आरोप पत्र, घटनास्थल नक्शा और चिकित्सा उपचार के बिल वाऊचर से भी साबित किया गया है । आक्षेपित अधिनिर्णय और आदेश अनुमान और अटकलों के आधार पर पारित किया गया है जो अपास्त किया जाने और अपील मंजूर किए जाने योग्य है ।

6. प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 (यान का स्वामी और चालक) और प्रत्यर्थी सं. 3 (बीमाकर्ता) के विद्वान् काउंसेलों ने दावेदारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का दृहणतापूर्वक विरोध किया और यह दलील दी है कि अभिकथित क्षतियां मारुति वैगन-आर सं. यू. पी. 74 के 8724 के चालक द्वारा कारित नहीं की गई हैं बल्कि किसी अन्य दुर्घटना में किसी अन्य स्थान पर कारित हुई हैं ; उसे बरेली के अस्पताल में भर्ती कराया गया था जो दुर्घटना स्थल से लगभग 70 से 80 किलोमीटर की दूरी पर है जैसा कि दावेदारों द्वारा अभिकथित है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दुर्घटना के 8 दिन बाद दर्ज कराई थी । इसमें आगे यह भी दलील दी गई है कि रिंकी देवी (अभि. सा. 1) प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, ऋषि पाल (अभि. सा. 2) दुर्घटना स्थल के आस-पास नहीं रहता है, वह मृतक का साला है ; अचानक घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्वाभाविक नहीं है और उसके साक्ष्य का समर्थन और पुष्टि अभिलेख पर उपलब्ध अन्य साक्ष्य द्वारा भी नहीं की गई है । विद्वान् काउंसेलों द्वारा यह भी दलील दी गई है कि स्वतंत्र साक्षी जिसको वर्तमान प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में दुर्घटना स्थल के निकट का निवासी दर्शाया गया है, दावेदारों द्वारा न्यायालय में पेश नहीं किया गया है, इसलिए आक्षेपित आदेश वैध है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

8. मोटर यान अधिनियम की धारा 168, धारा 169 और धारा 176 के अधीन समुचित प्रतिकर के निर्धारण कि प्रक्रिया का उपबंध किया गया है । मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के अनुसार प्रतिकर के निर्धारण के लिए, अधिकरण ने दावा-आवेदन में जांच गठित करने की अपेक्षा की है, धारा 169 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि ऐसी जांच अभिनिर्धारित करने में दावा अधिकरण ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो उचित हो क्योंकि धारा 176 के अधीन राज्य सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है । धारा 168, 169 और 176 नीचे इस प्रकार पुर:स्थापित है :–

> "**168. दावा अधिकरणों का अधिनिर्णय** – (1) धारा 166 के अधीन किए गए प्रतिकर के लिए आवेदन की प्राप्ति पर, दावा अधिकरण बीमाकर्ता को आवेदन की सूचना देने और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् (जिसके अंतर्गत बीमाकर्ता भी है,) यथास्थिति, दावे की या दावों में से प्रत्येक की जांच करेगा तथा, धारा 162 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अधिनिर्णय देगा जिसमें प्रतिकर की उतनी रकम अवधारित होगी, जितनी उसे न्यायसंगत प्रतीत होती है तथा वह व्यक्ति या वे व्यक्ति विनिर्दिष्ट होंगे जिन्हें प्रतिकर दिया जाएगा, और अधिनिर्णय देते समय दावा अधिकरण वह रकम विनिर्दिष्ट करेगा जो, यथास्थिति, बीमाकर्ता द्वारा या उस यान के जो दुर्घटना में अंतर्ग्रस्त था, स्वामी या चालक द्वारा, अथवा उन सब या उनमें से किसी के द्वारा दी जाएगी :
>
> परंतु जहां ऐसे आवेदन में किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थाई निःशक्तता के बारे में धारा 140 के अधीन प्रतिकर के लिए कोई दावा किया गया है, वहां ऐसा दावा और ऐसी मृत्यु या स्थाई निःशक्तता के बारे में प्रतिकर के लिए कोई अन्य दावा (चाहे वह ऐसे आवेदन में या अन्यथा किया गया है) अध्याय 10 के उपबंधों के अनुसार निपटाया जाएगा ।

(2) दावा अधिकरण अधिनिर्णय की प्रतियां संबंधित पक्षकारों को शीघ्र ही, और किसी भी दशा में अधिनिर्णय की तारीख से पन्द्रह दिन की अवधि के भीतर, परिदत्त करने की व्यवस्था करेगा ।

(3) जहां इस धारा के अधीन कोई अधिनिर्णय किया जाता है वहां वह व्यक्ति जिससे ऐसे अधिनिर्णय के निबन्धनों के अनुसार किसी रकम का संदाय करने की उपेक्षा की जाती है, दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय घोषित करने की तारीख से तीस दिन के भीतर अधिनिर्णीत समस्त रकम, ऐसी रीति से जैसी दावा अधिकरण निर्दिष्ट करे, जमा करेगा ।

169. दावा अधिकरणों की प्रक्रिया और शक्तियां – (1) धारा 168 के अधीन कोई जांच करते समय दावा अधिकरण ऐसे किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, जो इस निमित्त बनाए जाएं, ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया या अनुसरण करेगा जो वह ठीक समझे ।

(2) दावा अधिकरण को शपथ पर साक्ष्य लेने, साक्षियों को हाजिर कराने तथा दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं का प्रकटीकरण और पेशी कराने तथा ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जो विहित किए जाएं सिविल न्यायालय की सब शक्तियां प्राप्त होंगी, तथा दावा अधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सब प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

(3) ऐसे किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाए जाएं, दावा अधिकरण प्रतिकर के किसी दावे का अधिनिर्णय करने के प्रयोजन के लिए, जांच करने में उसे सहायता देने के लिए, जांच से सुसंगत किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाले एक या अधिक व्यक्तियों को चुन सकेगा ।

176. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – राज्य सरकार धारा 165 से धारा 174 तक के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी और ऐसे नियम

विशिष्टतया निम्नलिखित सभी बातों या उनमें से किसी के लिए उपबन्ध कर सकेंगे, अर्थात् –

(क) प्रतिकर के दावों के लिए आवेदन का प्ररूप तथा वे विशिष्टियां जो उनमें हो सकेंगी और वे फीसें, यदि कोई हों, जो ऐसे आवेदनों की बाबत दी जानी है ;

(ख) इस अध्याय के अधीन जांच करने में दावा अधिकरण द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) सिविल न्यायालय में निहित शक्तियां जिनका प्रयोग दावा अधिकरण कर सकेगा ;

(घ) वह प्ररूप जिसमें, वह रीति जिससे तथा वह फीस (यदि कोई हो) जिसे देने पर दावा अधिकरण के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकेगी ;

(ङ) कोई अन्य बात, जो विहित की जानी है या की जाए ।

9. राज्य सरकार ने मोटर यान अधिनियम की धारा 176 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उत्तर प्रदेश मोटर यान नियम, 1998 (जिसे इसमें इसके पश्चात संक्षेप में "नियम" कहा गया है) विरचित किए हैं । इस अवसर पर नियम 211क के साथ पठित नियम 203क और 203ग सुसंगत हैं जिनके अधीन अन्वेषण अधिकारी द्वारा तैयार किए गए कतिपय दस्तावेजों की उपधारणा का उपबंध किया गया है । ये नियम इस प्रकार हैं :–

नियम 203क. अन्वेषक पुलिस अधिकारी के कर्तव्य – अन्वेषक पुलिस अधिकारी सड़क/सड़कों या स्थान, जैसा भी मामला हो, का नक्शा और चौड़ाई इत्यादि इंगित करने के पैमाने पर स्थल नक्शा तैयार करेगा, यान/यानों की प्रास्थिति और उसमें अंतर्वलित व्यक्तियों और ऐसे अन्य तथ्यों को, जैसा भी साक्षियों द्वारा सुसंगत और प्राधिकृत हो और कोई साक्षी उपलब्ध न हो तब दुर्घटना से संबंधित ऐसे साक्ष्य को संरक्षित किया जाएगा । जैसा

की ऊपर उल्लेख किया गया है, दावा अधिकरण के समक्ष कार्यवाही के प्रयोजन के लिए, वह दुर्घटना के दृश्य को अन्य बातों के साथ-साथ ऐसे कोणों से फोटोग्राफी करेगा जिससे दुर्घटना को स्पष्ट रूप से दर्शाया जा सके ।

2. अन्वेषक पुलिस अधिकारी दुर्घटना में अन्तर्वलित मोटर यान के संबंध में बीमा प्रमाणपत्र/पालिसी का पूर्ण विवरण और धारा 158 की उपधारा (1) में उल्लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने की उपेक्षा के लिए, और उसके बाद या तो रसीद के माध्यम से इसे अपने कब्जे में लेने के लिए या इसकी फोटोकापियां रखने के लिए, उन्हें प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति द्वारा उनके सत्यापन के बाद प्राप्त करेगा ।

3. अन्वेषक पुलिस अधिकारी उसे जारी करने वाले प्राधिकारी से लिखित में पुष्टि प्राप्त करने के लिए उपनियम 2 के अधीन एकत्रित दस्तावेजों को सत्यापित कर सकता है ।

4. अन्वेषक पुलिस अधिकारी दावा अधिकरण को दुर्घटना के संबंध में विस्तृत रिपोर्ट के साथ उपनियम 1 के अधीन तैयार किया गया घटनास्थल नक्शा और फोटोग्राफ, उपधारा 2 और 3 के अधीन एकत्रित दस्तावेजों का सत्यापन, जाली पाए गए दस्तावेजों के मामले में की गई कार्यवाही, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट की प्रतियां, चिकित्सा विधिक रिपोर्ट, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और शव-परीक्षा रिपोर्ट (मृत्यु के मामलें में) प्रस्तुत करेगा किन्तु दावा अधिकरण द्वारा जारी किए गए आदेश/मांग की प्राप्ति के 15 दिनों के बाद नहीं :

परंतु यह कि यदि अभिकर्ता या क्षतिग्रस्त/पीड़ित या उत्तराधिकारी या दुर्घटना में मृतक के प्रतिनिधियों द्वारा अनुरोध किया जाए तब ऐसी सूचना बीमा कंपनी को भी भेजी जा सकती है ।

अन्वेषक पुलिस अधिकारी प्ररूप एस.आर. 48क में दावा अधिकरण के समक्ष इस नियम के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा ।

5. उपनियम (1) से (3) में प्रगणित अन्वेषक पुलिस अधिकारी के कर्तव्यों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे उत्तर प्रदेश पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 23 की परिधि में आते हैं और किसी भी प्रकार का उल्लंघन का उस विधि में परिकल्पित परिणाम के अध्यधीन होगा ।

नियम 203ग. पंजीकरण प्राधिकारी के कर्तव्य – (1) मोटर यानों के पंजीकरण अधिकारी और चालन अनुज्ञप्ति जारी करने वाले अनुज्ञप्ति प्राधिकारी, जब भी अधिकरण द्वारा निर्देश दिया जाए या बीमा कंपनी द्वारा पूछा जाए, दुर्घटना में अंतर्वलित यान के चालन संबंधी अनुज्ञप्ति और पूर्ण ब्यौरे के साथ अन्य दस्तावेज और पंजीकरण के सत्यापन के संबंध में जारी प्रमाणपत्र या रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा ।

(2) मोटर यानों के पंजीकरण प्राधिकारी और अनुज्ञप्ति प्राधिकारी, उस व्यक्ति/उन व्यक्तियों को जो दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों के परिजन हैं या मृतक के विधिक प्रतिनिधि हैं, जैसा भी मामला हो, प्रतिकर के लिए याचिकाएं फाइल करना चाहते हैं, उपनियम (1) में उल्लिखित जानकारी भी देगा ।

नियम 211क. "रिपोर्ट प्रमाणपत्रों और प्रस्तुत किए गए कागजों या नियम 203क, 203ग और 203घ के अधीन जारी किए गए प्रमाणपत्रों को, जब तक कि प्रतिकूल साबित न हो, सत्य माना जाएगा और औपचारिक सबूत के बिना साक्ष्य में पढ़ा जाएगा ।"

10. चूंकि प्रतिकर अवधारण करने की प्रक्रिया एक जांच हैं, इसलिए दांडिक विचारण और सिविल वाद जैसी प्रक्रियाओं में लागू विधि के सिद्धांत ऐसी कार्यवाही में लागू नहीं होंगे । इसमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दुर्घटना कारित करने के बाद यान का चालक अत्यंत गंभीर स्थिति में क्षतिग्रस्त व्यक्ति को छोड़कर घटनास्थल से भागने का प्रयत्न करते हैं । ऐसी स्थिति में राहगीर और दर्शक उसकी सहायता के लिए आते हैं । वे उल्लंघनकारी यान का पीछा करने का प्रयत्न करते हैं और

उसका रजिस्ट्रेशन संख्या लिखते हैं और उल्लंघनकारी यान के चालक को पकड़ने का भी प्रयत्न करते हैं तथा दावेदार/इत्तिलाकर्ता या घटनास्थल पर उपलब्ध व्यक्ति को इसकी जानकारी देते हैं । यह भी देखा गया है कि कुछ मामलों में न्यायालय में उपस्थित होने या पुलिस द्वारा की जाने वाली जांच से बचने के लिए प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अपने नाम नहीं बताते हैं । उपरोक्त स्थिति में सरकार द्वारा विरचित नियमों के अधीन स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और जांच अधिकारी द्वारा तैयार किए गए कतिपय दस्तावेज, घटनास्थल के फोटो तथा दुर्घटना संबंधी स्थलनक्शा, जब तक कि प्रतिकूल साबित न किया जाए, औपचारिक सबूत के बिना पढ़े जाएगे ।

11. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **एन.के.वी. ब्रदर्स (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **एम. करुमाई अमाल**[1] वाले मामलें में यह अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण इस संबंध में सतर्क रहने के लिए बाध्य है कि प्रक्रियात्मक विधि की तकनीकियों का अनुपालन किया गया है ताकि निर्दोष व्यक्ति को कोई हानि न हो और आगे निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "हमारे देश में सड़क दुर्घटना में सबसे अधिक मृत्यु होती हैं, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब ट्रक और बस चालक रात में यान चलाते हैं । जैसा कि हमने पूर्ववर्ती अन्य मामलों में पाया है, लापरवाही से संबंधित इस तथ्य ने न्यायालयों का ध्यान "स्वयं प्रमाण" के सिद्धांत पर आरंभिक उपधारणा लेने के लिए आकर्षित किया है । दुर्घटना अधिकरणों को यह देखने के लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए कि निर्दोष पीड़ितों को नुकसान न पहुंचे और चालकों और यान स्वामी कुछ संदेह या कुछ अस्पष्टता के कारण दायित्व से न बच पाएं । साधारण मामलों को छोड़कर उन परिस्थितियों से दोषिता का अनुमान लगाया जाना चाहिए जो युक्तिसंगत हों । न्यायालय को बारीकियों, तकनीकियों और रहस्यमयी परिस्थितियों से समझौता नहीं करना चाहिए । हम इस पहलू पर इसलिए जोर दे

[1] 1980 ए. सी. जे. 435 (एस. सी.).

रहे हैं कि परिवहन संचालक अपनी ज़िम्मेदारी से काफी दूर हैं और न्यायालयों द्वारा ढिलाई बरते जाने के कारण वे सावधानी पूर्वक चालन के मामले में चालकों के ऊपर पर्याप्त अनुशासनात्मक नियंत्रण नहीं रखते हैं ।"

12. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **बिमला देवी** बनाम **हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य**[1] वाले मामलें में दुर्घटना के सबूत के लिए अपेक्षित साक्ष्य की प्रकृति और अधिकरण के समक्ष प्रतिकर के अवधारण पर चर्चा करते हुए, इस प्रकार अभिनिर्धारित किया हैं :–

"14. दावेदारों के साक्षियों के साक्ष्य में कुछ विसंगतियां हो सकती हैं किंतु अधिकरण के समक्ष और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि प्रश्नगत बस दुर्घटना में अंतर्वलित थी या नहीं । उक्त विवाद्यक का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 के उपबंधों के निबंधनों में सबूत के भार के अधीन सिद्धांत लागू किया जाना अपेक्षित समझा कि क्या कंबल में लिपटा एक मृतक शरीर घटनास्थल पर पड़ा मिल सकता है वह भी इतनी सुबह-सुबह, जिसको प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 द्वारा साबित किया जाना अपेक्षित था ।"

"15. ऐसी स्थिति में, अधिकरण ने मामले का समग्र दृष्टिकोण लेकर ठीक ही किया है । यह ध्यान में रखा जाना आवश्यक था कि किसी बस (यान) विशेष द्वारा कारित दुर्घटना में दावेदारों द्वारा ऐसा सटीक सबूत दिया जाना संभंव नहीं था कि घटना विशेषकर किस तरह घटित हुई । दावेदारों को केवल संभाव्यता कि प्रबलता की कसौटी पर अपने मामले को सिद्ध करना था । सबूत का मानक संभाव्यता की प्रबलता के परे लागू नहीं होना चाहिए । उक्त परियोजन के लिए, उच्च न्यायालय को दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए उनके वृत्तान्त पर विचार करना चाहिए था ।"

---

[1] (2009) 13 एस. सी. सी. 530.

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **कुसुम लता** बनाम **सतबीर**[1] वाले मामले में विचारण न्यायालय के समक्ष अपेक्षित साक्ष्य की प्रकृति को अवधारित करते हुए, पुनः इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "8. अधिकरण और उच्च न्यायालय ने धीरज कुमार की उपस्थिति को स्वीकार करने से इनकार कर दिया क्योंकि पीड़ित के भाई द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उसका नाम दर्ज नहीं कराया था । यह न्यायालय, अधिकरण और उच्च न्यायालय के उपरोक्त मत का मूल्यांकन करने में असमर्थ है । इस न्यायालय का यह मत है कि जब कोई व्यक्ति यह देख रहा है कि उसके भाई को तेज गति वाले यान ने टक्कर मार दी है और वह दर्द से पीड़ित है तथा उसे तुरंत चिकित्सा की आवश्यकता है तो वह व्यक्ति स्पष्ट रूप से एक दर्दनाक स्थिति में होता है । उसका पहला प्रयास अपने भाई को अस्पताल या डाक्टर के पास ले जाना होगा । ऐसे व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक है कि वह आस-पास किसी भी व्यक्ति की उपस्थिति के प्रति सचेत न हो, इसीलिए धीरज दुर्घटना के बाद घटनास्थल पर नहीं रूका था और न ही उसने उल्लंघनकारी यान का पीछा किया । ऐसे मानसिक तनाव में यदि मृतक का भाई उल्लंघनकारी यान का नंबर लेना भूल गया हो तो यह भी अस्वाभाविक नहीं था ।"
>
> "9. ऐसा कोई कारण नहीं है कि अधिकरण और उच्च न्यायालय धीरज कुमार के साक्ष्य की अनदेखी करेगें । वस्तुतः अधिकरण द्वारा और उच्च न्यायालय द्वारा धीरज कुमार के साक्ष्य को खारिज करने का कोई ठोस कारण नहीं बताया गया है । तथाकथित यह कारण कि चूंकि धीरज कुमार का नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में दर्ज नहीं था इसलिए धीरज कुमार इस दुर्घटना का प्रत्यक्ष साक्षी नहीं हो सकता, इस मामले में स्थिति का उचित आकलन नहीं दर्शाता है । यह सर्वविदित है कि मोटर दुर्घटना दावे से संबंधित मामले में, दावेदार के लिए मामले को साबित करना

[1] 2011 ए. सी. जे. 926 (एस. सी.).

आवश्यक नहीं है क्योंकि इसे दांडिक विचारण में साबित किया जाता है । न्यायालय को यह विभेद ध्यान में रखना चाहिए ।"

14. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **बिमला देवी** बनाम **सतबीर सिंह**[1] वाले मामले में दावा याचिका में प्रतिकर तय किए जाने हेतु आवश्यक सबूत की प्रकृति को पुनः दोहराया है और निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"10. दावा मामलों में साक्षियों, विशेषकर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, का मिल पाना बहुत कठिन है, इस प्रकार साक्ष्य अधिनियम के अनुसार तथ्यों के अत्यंत ठोस सबूत से संबंधित उपबंधों का कड़ाई से पालन नहीं किया जा सकता । उन मामलों में, कुछ रियायत दी जानी चाहिए, लेकिन यह नहीं माना जा सकता है कि साक्ष्य अधिनियम की पूरी तरह से अनदेखी की जाए ।"

"11. इसमें ऊपर उल्लिखित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी मामले में अभियोजन करने में निष्ठुर और लापरवाह रहे हैं और वस्तुतः ऐसा करके ठीक नहीं किया है । हम इस मामले पर इस दृष्टिकोण से विचार नहीं कर सकते कि अपीलार्थियों के लिए न्याय के दरवाजे बंद हो जाएं । मोटर यान अधिनियम विधान का सामाजिक अंग है और इसे इस आशय और उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है कि दावेदारों/पीड़ितों के कुटुंब के सदस्यों को अतिशीघ्र क्षतिपूर्ति की सुविधा प्रदान की जा सके । किसी भी मामलें में पैसा इसके लिए कोई विकल्प नहीं हो सकता लेकिन लंबे समय में इसका कुछ लाभ मिल सकता है । इस प्रकार इन मामलों में अधिक यथार्थवादी, व्यावहारिक और उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना वांछनीय है ।"

15. इस प्रकार, इस सम्बन्ध में विधि सुस्थिर है कि मोटर दुर्घटना के कारण दिए जाने वाले प्रतिकर से संबंधित विधि, एक हितकारी विधान है । चालक की उपेक्षा या उल्लंघनकारी यान के अंतर्वलित होने की

[1] (2013) 14 एस. सी. सी. 345.

अवधारण करने में साक्ष्य का ठोस सबूत अपेक्षित नहीं है दुर्घटना दावा मामले में साक्ष्य की जांच करने का मानक, संभाव्यता की प्रबलता पर आधारित है । ऐसे मामले में, अभिकथित यान के प्रथमदृष्ट्या अंतर्वलित होने का साक्ष्य ही पर्याप्त होता है

16. इस प्रकार यह देखना होगा कि अभिलेख पर प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य उपलब्ध है या नहीं जिसके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि अभिकथित दुर्घटना तारीख 22 मार्च, 2016 को सायं 3 बजे पुलिस थाना कटरा, जिला शाहजहांपुर, जलालाबाद रोड पर मोहल्ला राम नगर कालोनी के निकट घटित हुई थी जिसमें मृतक राज पाल को बहुत सी क्षतियां पहुंची थीं और बाद में तारीख 31 मार्च, 2016 को उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई ।

17. आक्षेपित अधिनिर्णय का परिशीलन करने से, यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान् अधिकरण ने दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ऋषि पाल (अभि. सा. 2) जो मृतक का सगा साला है, के एकमात्र परिसाक्ष्य का अवलंब नहीं लिया क्योंकि दुर्घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति स्वाभाविक नहीं थी; और उसके अनुसार मृतक को अस्पताल में पुलिस द्वारा भर्ती कराया गया था और पुलिस रिपोर्ट से उसके कथन की पुष्टि नहीं होती है ; मृतक को जिला शांहजहांपुर के किसी भी अस्पताल में उपचार के लिए भर्ती नहीं कराया और क्षति-रिपोर्ट, स्थल नक्शा और शव-परीक्षा रिपोर्ट से ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के कथन की पुष्टि नहीं होती है क्योंकि मृत्युपूर्व मृतक के सिर पर क्षतियों के चिह्न नहीं मिले थे ।

18. यह विधि का सुस्थिर सिद्धांत है कि यदि घटनास्थल पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की उपस्थिति साबित हो जाती है और उसका कथन विश्वसनीय पाया जाता है तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने में हुए विलंब ; पुलिस दस्तावेजों में आई कमी, चिकित्सीय साक्ष्य में पाए गए किसी दोष और अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के प्रस्तुत न किए जाने जैसी बातें उक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य के मूल्यांकन में महत्वहीन होंगी ।

19. रिंकी देवी (अभि. सा. 1) कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है ।

ऋषि पाल (अभि. सा. 2) को घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में दावेदारों द्वारा पेश किया गया है । इस प्रकार यह देखा जाना है कि दुर्घटना स्थल पर ऋषि पाल (अभि. सा. 2) की उपस्थिति साबित हुई है या नहीं और उसका कथन विश्वसनीय है या नहीं । वह जिला बरेली के पुलिस थाना-फरीदपुर के ग्राम-ईसूरा का निवासी है क्योंकि अभिकथित दुर्घटना जिला शाहजहांपुर के पुलिस थाना कटरा बाजार, जलालाबाद रोड, मोहल्ला राम नगर कालोनी में घटित हुई थी । वह मृतक राज पाल का सगा साला हैं । उसके अनुसार दुर्घटना के समय, वह मटका (होली त्यौहार की पूर्वसंध्या पर मनाया जाने वाला एक रिवाज) में शामिल होने मृतक के घर जा रहा था । जैसे ही वह कटरा बाजार चौराहे से जलालाबाद मार्ग होते हुए अपनी ससुराल की ओर बढ़ा और चौराहे से 200 मीटर दूर पहुंचा तो उसने देखा कि उसका साला बाजार के लिए कटरा चौराहे की ओर पैदल आ रहा था और वह उससे 50 मीटर की दूरी पर था, तभी सफेद रंग की मारुति वैगन-आर कार सं. यू.पी. 74 के 8724, के चालक ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए पीछे से राज पाल को टक्कर मारी और चालक दुर्घटना स्थल से भाग गया । प्रतिपरीक्षा में, उसने स्वीकार किया कि दुर्घटना स्थल पर भीड़ एकत्रित हो गई थी और एक अज्ञात व्यक्ति ने पुलिस को फोन किया, तत्पश्चात् पुलिस वहां पहुंची । उसने आगे यह कथन किया है कि मृतक को पुलिस द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया गया । उसने यह भी स्वीकार किया कि कथित दुर्घटना जयनारायण के घर के सामने घटित हुई थी । उसके अनुसार, सड़क पर जहां दुर्घटना हुई थी वह पश्चिम से दक्षिण की ओर जाती है और दुर्घटना सड़क के पश्चिम दिशा में घटित हुई । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया कि वह कटरा बाजार में किसी अस्पताल में मृतक राज पाल को नहीं ले गया, परंतु उसने विशिष्ट रूप से यह कथन किया कि उसने उल्लंघनकारी यान का रजिस्ट्रेशन नंबर आगे और पीछे दोनों तरफ से देखा था । उसने आगे यह कथन किया कि वह मृतक को पुलिस के साथ बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल की एबुलेंस में ले गया । रिंकी देवी (अभि. सा. 1) ने भी यह कथन किया कि मृतक को पुलिस और ऋषि पाल (अभि. सा. 2) द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया था ।

20. इस मामले में, दुर्घटना की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दुर्घटना से 8-9 दिन बाद दर्ज कराई गई थी जिसमें विशिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि कथित दुर्घटना को वीरेश कुमार मिश्रा और ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने देखा था ।

21. यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि केवल इस आधार पर कि साक्षी मृतक या इत्तिलकर्ता के नातेदार हैं, उनके परिसाक्ष्यों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता । यदि विरोधी पक्षकारों अर्थात् उल्लंघनकारी यान के चालक, स्वामी और बीमाकर्ता ने यान के दुर्घटना में अंतर्वलित न होने के संबंध में अभिकथन किया है तो वह तर्कपूर्ण साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए जबकि दावेदारों ने यह साबित किया गया है कि मृतक की मृत्यु उल्लंघनकारी यान से ही कारित हुई थी ।

22. मृत्यु सूचना रिपोर्ट सिद्ध विनायक अस्पताल से जिला बरेली के पुलिस थाना कोतवाली के निरीक्षक को भेजी गई थी जिसमें यह दर्शाया गया था कि मृतक राज पाल को एंबुलेंस की सहायता से भर्ती कराया गया था । इस दस्तावेज को दावेदारों द्वारा फाइल किया गया है जिसमें यह उल्लिखित किया गया है कि मृतक राज पाल को तारीख 22 मार्च, 2016 को दोपहर 3.10 बजे अचेत अवस्था में अस्पताल में भर्ती कराया गया था और तारीख 31 मार्च, 2016 को सायं 6.00 बजे जलालाबाद मार्ग पर कारित दुर्घटना में सिर और दोनों टांगों में गंभीर क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । यद्यपि घटित दुर्घटना के स्थल नक्शे में, साक्षी की उपस्थिति दर्शायी नहीं गई है किन्तु इस दस्तावेज के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभिकथित दुर्घटना मार्ग के पश्चिम दिशा में घटित हुई थी और मृतक को टक्कर पीछे से लगी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उपरोक्त यान का रजिस्ट्रेशन नंबर का उल्लेख विशिष्ट रूप से किया गया है और अन्वेषण के पश्चात् उपरोक्त कार के चालक मानसिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 338 और 304क के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया था ।

23. न तो मृतक राज पाल के साले ऋषि पाल (अभि.सा. 2) ने

और न ही मृतक की पत्नी रिंकी देवी प्रति.सा.1 ने यह अभिकथन किया है कि सिद्ध विनायक अस्पताल घटनास्थल से 70-80 किलोमीटर दूरी पर स्थित है परन्तु अधिकरण ने अभिलेख पर गैर-अपीलार्थी अर्थात् बीमाकर्ता, चालक या स्वामी के साक्ष्य के बिना अन्य किसी साक्ष्य से इस तथ्य को अभिलिखित किया है कि बरेली घटनास्थल से 70-80 किलोमीटर दूर है ।

24. शाहजहांपुर और बरेली निकटवर्ती जिले हैं । बीमा कंपनी द्वारा अधिकरण के समक्ष न तो रिंकी देवी (अभि. सा. 1) और न ही ऋषि पाल (अभि. सा. 2) की प्रतिपरीक्षा इस बिन्दु पर कराई गई कि क्या मृतक को बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल में उपचार के लिए भर्ती कराया गया था । अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि मृतक राज पाल दुर्घटना के समय नाजुक स्थिति में था । इस प्रकार यदि पुलिस की सलाह पर सहायता करने वाली एंबुलेंस से उत्तम उपचार के लिए मृतक को बरेली के सिद्धि विनायक अस्पताल में ले जाया गया था और ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने विरोध नहीं किया था तो इस आधार पर उसका साक्ष्य अविश्वसनीय नहीं समझा जा सकता ।

25. मेरी राय में, ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के साक्ष्य की अविश्वसनीयता के संबंध में विद्वान् अधिकरण द्वारा इस आधार पर निकाला गया निष्कर्ष कि पुलिस ने बरेली के अस्पताल में मृतक को भर्ती कराया था या ऋषि पाल (अभि. सा. 2) ने शाहजहांपुर में किसी भी अस्पताल में मृतक को भर्ती नहीं कराया था या पुलिस ने इस बात से इनकार किया कि बरेली के अस्पताल में मृतक को भर्ती कराने में ऋषि पाल (अभि. सा. 2) की कोई भूमिका थी जैसी बातें इस दुर्घटना दावा आवेदन में न्यायसंगत नहीं है क्योंकि अनियमितताएं या असंगतताएं इस मामलें के तथ्यों और परिस्थितियों में या तो पृष्ठीय या सारहीन हैं ।

26. इस परिस्थिति में यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अधिकरण ने दावेदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया है क्योंकि मृतक की क्षति रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की थी और शव-परीक्षा रिपोर्ट में मृत्यु पूर्व की क्षतियां मृतक के सिर पर नहीं पाई गईं

चूंकि ऋषि पाल (अभि. सा. 2) के अनुसार अभिकथित दुर्घटना में मृतक के सिर में क्षतियां पहुंची थीं ।

27. अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि अभिकथित दुर्घटना में कारित अनेकों क्षतियों के कारण, मृतक राज पाल की स्थिति दुर्घटना के समय नाजुक थी, इसलिए मेरी राय में यदि मृतक को किसी सरकारी अस्पताल में नहीं ले जाया गया था और क्षति रिपोर्ट न तो तैयार की गई थी और न ही अधिकरण के समक्ष फाइल की गई थी, इन बातों से दावेदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की सत्यनिष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

28. जहां तक शव-परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार सिर में मृत्युपूर्व क्षति के पाए जाने का संबंध है, शव-परीक्षा रिपोर्ट के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मृत्युपूर्व तीन क्षतियों का उल्लेख शव-परीक्षा रिपोर्ट में किया गया है जिसमें क्षति सं. 1 में 3 सें. मी. से 2 सें. मी. के घाव में टाके लगाए गए हैं और क्षति सं. 2 में 3 सें. मी. के घाव में टांके लगाए गए हैं और ये दोनों क्षतियां दाईं आंख की भौंह के ऊपर पाई गई हैं जबकि क्षति सं. 3 के अनुसार दोनों टांगों में अस्थिभंग पाया गया है । इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेख किया गया है कि मृतक के मस्तिष्क में रक्तपूतिता पाई गई है और शव-परीक्षा रिपोर्ट में दिए गए राय के कालम में, मृत्यु के कारण और रीति से संबंधित विशिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि मृतक की मृत्यु, मृत्युपूर्व सिर पर आई क्षति के कारण हुई है । इस प्रकार, अधिकरण द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि शव-परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार सिर में कोई क्षति कारित नहीं हुई या यह कि क्षति रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है ।

29. अभिलेख के परिशीलन करने से यह भी प्रकट होता है कि उल्लंघनकारी यान के पंजीकरण प्रमाणपत्र, बीमा पालिसी और मानसिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) के चालन अनुज्ञप्ति की प्रतियां ही प्रत्यर्थी-स्वामी द्वारा फाइल की गई थीं और दुर्घटना अन्वेषण रिपोर्ट की प्रति प्रत्यर्थी बीमा कंपनी के अन्वेषक द्वारा फाइल की गई थी जिसमें 69,808/- रुपए

मृतक के उपचार में उपगत खर्चों के रूप में सत्यापित किए गए । इस रिपोर्ट में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया जिससे उल्लंघनकारी यान द्वारा कारित अभिकथित दुर्घटना में कोई संदेह उत्पन्न होता हो । ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रत्यर्थी स्वामी, अभिकथित यान के चालक या बीमाकर्ता द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे दावेदारों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी और प्रत्यक्ष साक्ष्य का खंडन किया जा सके ।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह मत है कि अभिकथित दुर्घटना तारीख, 22 मार्च, 2016 को सांय 3 बजे उल्लंघनकारी यान सं. यू.पी. 74 के 8724 के चालक के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण घटित हुई थी जिसमें मृतक राज पाल को बहुत सी क्षतियां पहुंची थी और उपचार के दौरान 31 मार्च, 2016 को उसकी मृत्यु हो गई थी । इस मामले में विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधि के सुस्थापित सिद्धांत और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री के विरुद्ध है ।

31. जहां तक प्रतिकर के अवधारण या संदाय के दायित्व से संबंधित प्रश्न है, दावा आवेदन में मृतक पर आश्रितों की संख्या छह दर्शाई गई है । अपीलार्थी/दावेदार सं. 1, मृतक की पत्नी है और अन्य पांच दावेदार मृतक के बच्चे हैं । दुर्घटना के समय पर मृतक की आयु 40 वर्ष दर्शाई गई है, जो शव-परीक्षा रिपोर्ट और अभिलेख पर उपलब्ध मृतक की मत्यु सूचना रिपोर्ट से भी सत्यापित है । इस प्रकार, गुणांक के अवधारण के प्रयोजनार्थ, मृतक की आयु 40 वर्ष से 50 वर्ष अवधारित की गई है |

32. दावा-आवेदन में, मृतक की मासिक आय 15,000/- रुपए अभिकथित की गई है और उसका व्यवसाय राजमिस्त्री के रूप में दर्शाया गया है किन्तु इस संबंध में दावेदारों द्वारा कोई दस्तावेजी सबूत प्रस्तुत नहीं किए गए हैं । मृतक की पत्नी अर्थात् श्रीमती रिंकी देवी (अभि. सा. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिकथित किया है कि उसका पति राजमिस्त्री के रूप में श्रमिक का कार्य किया करता था परन्तु वह इसे नियमित रूप से नहीं करता था । इस मामले के तथ्यों और

परिस्थितियों को देखते हुए, दावेदारों द्वारा मृतक की आय के संबंध में, कोई दस्तावेजी सबूत अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है और मृतक ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित एक अकुशल श्रमिक था इसलिए उसकी मासिक आय 3000/- रुपए निर्धारित की गई है |

33. उपरोक्त के अतिरिक्त, मृतक को तारीख 22 मार्च, 2016 को बरेली के सिद्ध विनायक अस्पताल में उपचार के लिए भर्ती कराया गया था जहां उसका उपचार तारीख 31 मार्च, 2016 तक अर्थात् उसकी मृत्यु होने तक निरंतर चला था । मृतक के उपचार पर हुए खर्च की राशि के अनेक बिल वाउचर दावेदारों द्वारा फाइल किए गए हैं जो निचले न्यायालय के अभिलेख पर उपलब्ध हैं । दावा याचिका में, यह विशिष्ट रूप से अभिकथित किया गया है कि मृतक के उपचार पर 10,000/- रुपए की राशि खर्च हुई थी । उक्त बिल वाउचरों को दावेदारों द्वारा प्राधिकृत रूप से साबित नहीं किया गया है, परंतु उसे बीमाकर्ता द्वारा नियुक्त किए गए अन्वेषक की सत्यापन रिपोर्ट के आधार पर प्रत्यर्थी बीमाकर्ता द्वारा सत्यापित किया गया है । इस रिपोर्ट में 69,808/- रुपए के बिल वाउचर सत्यापित किए गए और उक्त अन्वेषक द्वारा इसे सत्य पाया गया है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दावेदार चिकित्सा खर्चे के रूप में 70,000/- रुपए के हकदार हैं ।

34. उचित प्रतिकर को अवधारण करने से संबंधित विधि को माननीय उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक खंडपीठ द्वारा **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य**[1] वाले मामले में सुस्थापित किया गया है जिसमें माननीय न्यायालय ने विधि पर चर्चा करते हुए **सरला वर्मा** बनाम **दिल्ली परिवहन निगम**[2]**; रेशमा कुमारी** बनाम **मदन मोहन**[3]**; राजेश बनाम राजबीर सिंह**[4]**; संतोष देवी** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[5]**; मुन्ना लाल जैन** बनाम **विपिन कुमार**

---

[1] (2017) 16 एस. सी. सी. 680.

[2] (2009) 6 एस. सी. सी. 121.

[3] (2009) 13 एस. सी. सी. 422.

[4] (2013) 9 एस. सी. सी. 54.

[5] (2012) 6 एस. सी. सी. 421.

शर्मा[1] **; उत्तर प्रदेश सड़क रोडवेज परिवहन निगम** बनाम **त्रिलोक चन्द्र**[2]**; नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **पुष्पा**[3] और विभिन्न मामलों में उचित प्रतिकर के लिए अवधारण से संबंधित विधि कई मुद्दों में सुव्यवस्थित की है जो उचित प्रतिकर के अवधारण के लिए आवश्यक है अर्थात् (क) व्यक्तिगत और अवधारण गुणांक हेतु रहन-सहन खर्चे के लिए कटौती ; (ख) मृतक की आयु पर आश्रित के गुणांक का चयन ; (ग) मृतक की आयु के रूप में लागू गुणांक के लिए आधार ; (घ) पारंपरिक मदों के लिए अनुज्ञेय प्रतिकर अवधारण हेतु, जैसे अवस्था की हानि, सहजीविका की हानि और अंतिम संस्कार खर्चे ; (ङ) आय के अतिरिक्त संभावित भविष्य-लाभ दोनों स्थिति अर्थात् मृतक के स्थायी कर्मचारी या स्वयं स्वनियोजित होने जैसी दोनों स्थिति में दिया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **प्रणय सेठी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "59. हम उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए, अपने निष्कर्षों को अभिलिखित करते है :
>
> 59.1 संतोष देवी वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ को इस बाबत सुविचारित सलाह दी जानी चाहिए कि मामले को बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए चूंकि वह **सरला वर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में समकक्ष न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय मे भिन्न मत व्यक्त कर रही थी । इसका यह कारण है कि समान क्षमता वाली समकक्ष न्यायापीठ उस मत में भिन्न मत व्यक्त नहीं कर सकती जो मत पूर्व में किसी अन्य समकक्ष न्यायपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया जा चुका है ।
>
> 59.2 जैसाकि **रेशमा कुमारी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय जो पूर्ववर्ती समयबिंदु पर सुनाया गया था, का उल्लेख नहीं किया गया है, इसलिए **राजेश** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय बाध्यकारी पूर्वनिर्णय नहीं है ।

---

[1] (2015) 6 एस. सी. सी. 347.

[2] (1996) 4 एस. सी. सी. 362.

[3] (2015) 9 एस. सी. सी. 166.

59.3 आय का अवधारण किए जाने के प्रयोजनार्थ मृतक की भविष्य की संभाव्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसके वास्तविक वेतन का 50% जोड़ा जाना चाहिए जहां मृतक स्थायी नौकरी करता था और उसकी आयु 40 वर्ष से कम थी । यदि मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के मध्य थी तो 30 प्रतिशत जोड़ा जाना चाहिए | यदि मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के मध्य थी, इसमें 15 प्रतिशत जोड़ा जाना चाहिए । वास्तविक वेतन को कर (टैक्स) घटाकर वास्तविक वेतन के रूप में पढ़ा जाना चाहिए ।

59.4 यदि मृतक स्वनियोजित था या स्थिर वेतन पर था, तो उसके द्वारा साबित की गई आय का 40 प्रतिशत जोड़ा जाना चाहिए, जहां मृतक की आयु 40 वर्ष से कम थी । जहां मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के मध्य थी और वहां 10 प्रतिशत जोड़ना चाहिए जहां मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के मध्य थी, 25% जोड़ा जाना चाहिए और जहां मृतक की आयु 50 से 60 वर्ष के मध्य थी, 10% जोड़ा जाना चाहिए । साबित की गई आय का अर्थ है कर के संघटक को घटा कर प्राप्त होने वाली आय ।

59.5 अधिकरण और न्यायालय गुणांक के विनिर्धारण, व्यक्तिगत और रहन-सहन के खर्चों के बाबत कटौती के लिए **सरला वर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 30 से 32 द्वारा निर्देशित होंगे जिसे हमने इसमें पूर्व में प्रत्यावर्तित किया है ।

59.6 गुणांक का चयन **सरला वर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में के पैरा 42 के साथ पठित यथा उपदर्शित सारणी के अनुसार होगा ।

59.7 गुणांक को लागू किए जाने के लिए मृतक कि आयु को आधार मानना चाहिए ।

59.8 परंपरागत मदों के आधार पर युक्तिसंगत आंकड़े अर्थात्, कार्य की हानि, सहजीविका की हानि और अंतिम संस्कार के खर्चे क्रमश: 15000/- रूपए, 40,000/- रूपए और 15,000/- रूपए होने चाहिए । उपरोक्त रकम में प्रत्येक तीन वर्ष में 10 प्रतिशत की दर से वृद्धि की जानी चाहिए ।"

35. इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने न केवल मृतक की अवधारित आय/वेतन में जोड़ने की अनुमति दी है भले ही वह मृतक की आयु के अनुसार भिन्न दर पर भविष्य की संभावनाओं के लिए स्वनियोजित या स्थायी कर्मचारी था, किंतु व्यक्तिगत और जीविका खर्चे की कटौती की दर को भी अनुमोदित किया है और **सरला वर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 30 से 32 और पैरा 42 में यथा प्रस्तुत गुणांक का चयन किया है ।

36. **सरला वर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 30 से 32 और पैरा 42 को इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> 30. हालांकि कुछ मामलों में व्यक्तिगत और जीवनयापन खर्चे के लिए की जाने वाली कटौती **त्रिलोक चन्द्र** (उपरोक्त) वाले मामले में उपदर्शित यूनिटों के आधार पर संगणित की है, सामान्य नियम मानकीकृत कटौतियां लागू करना है । इस न्यायालय के अनेक पश्चात्वर्ती निर्णयों पर विचार करते हुए, हमारा यह मत है कि जहां मृतक विवाहित था, मृतक के व्यक्तिगत और जीवनयापन खर्चों के लिए कटौती एक तिहाई होनी चाहिए और जहां आश्रित कुटुंब सदस्यों कि संख्या 2 से 3 है वहां (1/3) हिस्सा होना चाहिए और जहां आश्रित कुटुंब सदस्यों की सं. 4 से 6 है वहां (1/4) हिस्सा होना चाहिए और जहां आश्रित कुटुंब सदस्यों की सं. 6 से अधिक है वहां (1/5) हिस्सा होना चाहिए ।
>
> 31. जहां मृतक व्यक्ति अविवाहित था और दावेदार उसके माता-पिता हैं, वहां कटौती विभिन्न सिद्धांतों के अनुसार की जाती है । अविवाहित व्यक्तियों के संबंध में साधारणतया व्यक्तिगत और जीवनयापन खर्चों के रूप में 50 प्रतिशत की कटौती की जाती है क्योंकि यह उपधारणा की जाती है कि कोई अविवाहित व्यक्ति स्वयं के ऊपर अधिक खर्च करेगा । अन्यथा भी कम समय में विवाह होने की संभावना भी है, जिसमें माता-पिता और भाई-बहन के योगदान में भारी कटौती होने की संभावना है । आगे इसके

विपरीत साक्ष्य के अध्यधीन, पिता की अपनी स्वयं आय होने की संभावना है और उसे आश्रित नहीं माना जाएगा और केवल माता को आश्रित समझा जाएगा । इसके विपरीत साक्ष्य के अभाव में भाईयों और बहनों को आश्रितों के रूप में नहीं माना जाएगा क्योंकि वे या तो स्वतंत्र या कमाने वाले या विवाहित या पिता पर निर्भर होंगे ।

32. इस प्रकार यदि मृतक के माता-पिता और भाई-बहन जीवित हैं तो केवल माता को आश्रित माना जाएगा और 50 प्रतिशत अविवाहित व्यक्ति के व्यक्तिगत और जीवनयापन खर्चों के रूप में माना जाएगा और 50 प्रतिशत कुटुंब का योगदान माना जाएगा । तथापि, जहां अविवाहित व्यक्ति का कुटुंब बड़ा है और मृतक की आय पर निर्भर है तो ऐसे मामले में जहां विधवा माता और बिना कमाने वाली छोटी बहनों या भाईयों की बड़ी संख्या है, उसके व्यक्तिगत या जीवनयापन खर्चों को एक तिहाई तक सीमित किया जा सकता है और कुटुंब का योगदान दो तिहाई माना जाएगा ।

42. इसलिए हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि गुणांक की उपरोक्त तालिका (जो **सुसामा थामस**, **त्रिलोक चन्द्र** और **चार्ली** वाले मामलों को लागू करते हुए तैयार की गई थी) के स्तम्भ (4) में यथाउल्लिखित लागू की जानी चाहिए जो 15 से 20 और 21 से 25 वर्ष के आयु समूह के लिए 18 के गुणांक (एम-18) से आरंभ होती है, और जिसे प्रत्येक पांच वर्ष के लिए एक यूनिट कम कर दिया गया, अर्थात् 26 से 30 वर्ष के लिए एम-17, 31 से 35 वर्ष के लिए एम-16, 36 से 40 वर्ष के लिए एम-15, 41 से 45 वर्ष के लिए एम-14 और 46 से 50 वर्ष के लिए एम-13, तत्पश्चात् प्रत्येक पांच वर्ष के लिए दो यूनिट कम कर दिया गया है, अर्थात् 51 से 55 वर्ष के लिए एम-11, 56 से 60 वर्ष के लिए एम-9, 61 से 65 वर्ष के लिए एम-7 और 66 से 70 वर्ष के लिए एम-5 ।"

37. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए, अपीलार्थी/दावेदारों को संदत्त प्रतिकार इस प्रकार

निर्धारित किया जाता है :–

क्र. सं.	शीर्षक	संगणना	राशि
1	प्रति वार्षिक आय	3,000/-×12 रुपए	36,000/- रुपए
2	25 प्रतिशत भविष्य की संभावनाओं के रूप में वार्षिक आय (1) में जोड़ा जाना	36,000/-+9,000/- रुपए	45,000/- रुपए
3	कॉलम सं. (2) में निर्धारित आय का 1/5 भाग, व्यक्तिगत और जीवनयापन खर्चों के लिए कटौती	45,000/-–9,000/- रुपए	36,000/- रुपए
4	मृतक के रूप में 14 से गुणांक द्वारा दुर्घटना के समय पर आयु 40-45 वर्ष के बीच थी	36,000/-×14 रुपए	5,04,000/- रुपए
5	गैर-धनसंबंधी हानि के शीर्षक में प्रतिकर (संपदा की हानि, सहजीविका की हानि और अंतिम संस्कार के खर्चों के लिए)	15,000/-+15,000/- +40,000/- रुपए	70,000/- रुपए

6	चिकित्सा खर्चों के बदले में प्रतिकर	70,000/- रुपए	70,000/- रुपए
	कुल योग (4+5+6)		6,44,000/- रुपए

38. जहां तक उपरोक्त प्रतिकर पर ब्याज का संबंध है, यह सुस्थिर किया गया है कि प्रतिकर पर संदत्त वार्षिक ब्याज प्रबल मूल्य सूचकांक और बैंक ब्याज की दर से होना चाहिए । इस प्रकार वर्तमान मूल्य सूचकांक और जमा राशि पर बैंक ब्याज की दर देखते हुए, दावेदार दावा आवेदन के फाइल करने की तारीख से उपरोक्त प्रतिकर पर 8 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के हकदार हैं ।

39. जहां तक उपरोक्त प्रतिकर के संदाय के दायित्व का संबंध है, जमुना प्रसाद (प्रत्यर्थी सं. 1) उल्लंघनकारी यान सं. यू. पी. 70 के 8724 का स्वामी है ; मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) दुर्घटना के समय पर उल्लंघनकारी यान का चालक था क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 3 को उक्त यान का बीमाकर्ता के रूप में दर्शाया गया है और अधिकथित दुर्घटना, जिसमें मृतक राज पाल की मृत्यु हुई थी, तारीख 22 मार्च, 2016 को घटित हुई थी ।

40. अधिकरण के समक्ष जमुना प्रसाद (प्रत्यर्थी सं. 1) द्वारा फाइल किए गए दस्तावेज सं. 22जी से 24जी का परिशीलन करने से, यह प्रतीत होता है कि उक्त उल्लंघनकारी यान हल्का मोटर यान (कार) है, जो जमुना प्रसाद के नाम में रजिस्ट्रीकृत है और तारीख 31 अक्तूबर, 2015 से 30 अक्तूबर, 2016 तक प्रत्यर्थी सं. 3 बीमा कम्पनी द्वारा बीमाकृत है । मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) की चालन अनुज्ञप्ति तारीख 15 सितम्बर, 2012 को जारी हुई थी, जो तारीख 22 मई, 2017 तक विधिमान्य थी । उक्त चालन अनुज्ञप्ति को कानपुर के क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी (आर.टी.ओ) सत्यापन के लिए भी भेजी गई थी जिसमें उनके तारीख 11 जुलाई, 2017 के पत्र द्वारा (अभिलेख पर उपलब्ध) जानकारी दी गई है कि अभिलेख के अनुसार, चालन अनुज्ञप्ति मान सिंह (प्रत्यर्थी सं. 2) के पक्ष में मोटरसाइकिल और हल्के मोटर यान अर्थात् कार के लिए जारी की गई थी जो तारीख 15 सितम्बर, 2012 से 3 जुलाई, 2016 तक विधिमान्य और प्रभावी थी ।

41. इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अधिकथित यान के सभी दस्तावेज चालन अनुज्ञप्ति सहित विधिमान्य और प्रभावित थे और उक्त यान दुर्घटना के समय प्रत्यर्थी सं. 3 से बीमाकृत था । यद्यपि प्रतिकर के संदाय का प्राथमिक दायित्व प्रत्यर्थी सं.1 और 2 पर डाला गया जो उल्लंघनकारी यान के स्वामी और चालक थे किंतु दुर्घटना के समय उक्त यान प्रत्यर्थी सं.3 बीमाकर्ता से बीमाकृत था और इसमें पॉलिसी भी भंग नहीं हुई इसलिए ब्याज के साथ उपरोक्त प्रतिकर के संदाय का वास्तविक दायित्व प्रत्यर्थी सं.3 (बीमाकर्ता) पर डाला गया है ।

42. उपरोक्त को ध्यान मे रखते हुए, नेशनल इंश्योरेस कम्पनी लिमिटेड (प्रत्यर्थी सं.3) को इस निर्णय की प्रति के प्राप्त होने की तारीख से एक मास की अवधि के भीतर अधिकरण के समक्ष दावा आवेदन की तारीख से 8 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 6,44,000/- रुपए (छह लाख चवालीस हजार रूपए) अधिकरण के समक्ष जमा करेगा । इस राशि में से दावेदार सं 2 से 6 तक प्रत्येक को एक-एक लाख रुपए का संदाय किया जाएगा जो उनके वयस्यक होने तक किसी राष्ट्रीयकरण बैंक में जमा रहेगी । प्रतिकर की शेष राशि उपरोक्त संपूर्ण धनराशि पर उपार्जित ब्याज के साथ अपीलार्थी सं.1 को संदत्त की जाएगी ।

43. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2017 का आक्षेपित आदेश और अधिनिर्णय एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है । अपील मंजूर की जाती है और दावेदारों द्वारा फाइल किया गया आवेदन यथाउल्लिखित ब्याज के साथ उपरोक्त सीमा तक प्रतिकर के रूप मे मंजूर किया जाता है ।

44. कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि निचले न्यायालय का अभिलेख इस निर्णय कि प्रति के साथ सूचना और अनुपालन के लिए अधिकरण को तत्काल वापस भेजा जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

महीं./अस.

शंभू नाथ

बनाम

बिहार राज्य

(2019 की सिविल रिट याचिका सं. 14947)

तारीख 26 फरवरी, 2021

न्यायमूर्ति चक्रधरी शरण सिंह

मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 (1994 का 42) – धारा 10 [सपठित मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1995 का नियम 7(3), 10, 16 और 23] – वृक्क का प्रतिरोपण – अस्पताल द्वारा वृक्क प्रतिरोपण से इनकार किया जाना – अंग दाता का निकट नातेदार न होना – ऐसी किसी भी सामग्री के अभाव में कि दाता ने अंग के संदान की सहमति दबाव में आकर दी है, दाता के संदान के अधिकार को प्रतिषिद्ध नहीं किया जा सकता और प्राधिकार समिति, दाता और प्राप्तिकर्ता के प्रतिरूपण संबंधी संयुक्त आवेदन को सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है और प्राधिकार समिति को यह मूल्यांकन करना होगा कि अंग दाता, अंग का संदान प्राप्तिकर्ता के साथ केवल स्नेह और लगाव के आधार पर कर रहा है और यह कि उनके बीच किसी भी प्रकार का कोई वाणिज्यिक संव्यवहार भी नहीं किया गया है ।

मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1995 – नियम 33 – अंग दाता की चिकित्सीय जांच – जैविक क्षमता और अनुकूलता – यदि प्रस्तावित दाता को अंग का संदान करना है तो उसे सभी चिकित्सा परीक्षण सुसंगत प्रक्रमों पर कराने होंगे ताकि अनुसंधान के लिए उसकी जैविक क्षमता और अनुकूलता सुनिश्चित की जा सके और दाता की शारीरिक एवं मानसिक जांच भी की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि उसका स्वास्थ्य ठीक है या नहीं और यह कि वह मानसिक रोग से ग्रसित तो नहीं है ।

मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 – धारा 10 [सपठित मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1995 का नियम 7(3), 16 और 23] – वृक्क का प्रतिरोपण – प्रतिरोपण के लिए अंगदान करने हेतु जीवित व्यक्ति का अधिकार – यदि कोई व्यक्ति स्वस्थचित्त है और आयु की दृष्टि से सक्षम है और किसी असम्यक् दबाव में नहीं है तब उसकी अंग दान करने हेतु प्राधिकार देने की इच्छा सर्वोपरि है ।

मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 – धारा 10 – मस्तिष्क-मृत्यु – रोगोपचार की जानकारी – अंग संदान किए जाने हेतु दाताओं का प्रोत्साहित किया जाना – रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसाय का यह कर्तव्य है कि वह मृतक के निकट नातेदार को जिसकी मस्तिष्क मृत्यु हो चुकी है इस बात से अवगत कराएं कि उसको यह विकल्प उपलब्ध है कि वह रोगोपचार के लिए मृतक के शरीर से मानव-अंग निकाले जाने को प्राधिकृत कर सकता है ।

इस मामले में वृक्क प्रतिरोपण से संबंधित उठाया गया है जिसमें याची सं. 1 को वृक्क की आवश्यकता थी और याची सं. 2 वृक्क का संदान करने के लिए तैयार था, जैसाकि अभिकथन किया गया है । तद्नुसार इस निर्णय और आदेश में याची सं. 1 को प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता और याची सं. 2 को प्रस्तावित दाता कहा गया है । भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल की गई है जिसमें प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिए जाने की ईप्सा की गई है कि वे उनका मामला पटना मेडिकल कालेज और अस्पताल, पटना की प्राधिकार समिति को सिफारिश के साथ अग्रेषित करें ताकि वृक्क के प्रतिरोपण के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र पारस एच.एम.आर.आई. अस्पताल, वेली रोड़, पटना (प्रत्यर्थी सं. 6 से 8) द्वारा जारी किया जा सके क्योंकि प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता रीनल विकार का उपचार इसी अस्पताल में करवा रहा था और इस अस्पताल की प्राधिकार समिति ने वृक्क का प्रतिरोपण करने से इनकार कर दिया था जबकि प्रस्तावित दाता वृक्क का संदान करने के लिए पहले से तैयार है । याची ने समिति के इसी आदेश के विरुद्ध अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका फाइल की । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस प्रकार न्यायालय की राय में यदि चिकित्सक के परामर्श के अनुसार अंग का प्रतिरोपण किया जाना आवश्यक है और वह दाता जो प्राप्तिकर्ता का निकट नातेदार नहीं है, अपना अंगदान करने की इच्छा व्यक्त करता है और इसके पश्चात् दाता और प्राप्तिकर्ता प्रतिरोपण नियम के नियम 10 के अधीन संयुक्त आवेदन प्रस्तुत करते हैं, तब रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायी और प्रतिरोपण संबंधी संस्था का प्रशासनिक विभाग, प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन दिए जाने हेतु फाइल किए गए आवेदन को अग्रेषित करने से इनकार नहीं कर सकता । प्राधिकार समिति द्वारा यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि ऐसा संदान प्राप्तिकर्ता से स्नेह या लगाव या अन्य किसी कारण से किया जा रहा है, जिन्हें प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9(3) के अधीन अनुध्यात किया गया है । प्राधिकार समिति को ही यह मूल्यांकन करना होगा कि प्राप्तिकर्ता और दाता के बीच कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं है और यह कि दाता को किसी भी धनराशि का संदाय नहीं किया गया है और न ही दाता को या अन्य किसी व्यक्ति को इस प्रकार संदाय किया गया है । नियम 7 के उप-नियम (3) के अधीन उन बिन्दुओं को अधिकथित किया गया है जिनके अनुसार प्राधिकार समिति को मूल्यांकन करते हुए इस निष्कर्ष तक पहुंचना होगा कि मानव-अंग का प्रस्तावित संदान में कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है । यह मूल्यांकन किए जाने के अतिरिक्त कि प्राप्तिकर्ता और दाता के बीच किसी भी प्रकार का कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है, वाणिज्यिक समिति प्रतिरोपण नियम के अधीन यह स्पष्ट करने के लिए बाध्य है कि दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच संबंध किस प्रकार स्थापित हुआ और उन परिस्थितियों को भी स्पष्ट करना होगा जिनके आधार पर अंग का संदान किया जाना है । प्राधिकार समिति से यह अपेक्षित है कि वह उन कारणों पर विचार करे कि दाता संदान करने के लिए क्यों इच्छुक है और प्राधिकार समिति को दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा यह भी सुनिश्चित करना होगा कि दाता और प्राप्तिकर्ता साथ-साथ रहते हैं । प्रतिरोपण के लिए फाइल किए गए आवेदन को स्वीकार करने के लिए प्राधिकार समिति को कतिपय पहलुओं पर विचार करना होगा अर्थात् ऐसे पुराने फोटोग्राफ

देखने होंगे जिनमें दाता और प्राप्तिकर्ता को एक साथ दर्शाया गया हो, यह भी सुनिश्चित करना होगा कि दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच कोई भी मध्यस्थ नहीं है और यह कि दाता स्वापक पदार्थ का सेवन करने का आदि नहीं है । प्राधिकार समिति से यह अपेक्षित है कि वह दाता और प्राप्तिकर्ता की वित्तीय हैसियत का मूल्यांकन करने के लिए उनसे उनके व्यवसाय और पिछले तीन वर्षों की आय से संबंधित समुचित साक्ष्य मांगे और यह भी सुनिश्चित करे कि दाता और प्राप्तिकर्ता की हैसियत के बीच भारी अंतर तो नहीं है ताकि इस आधार पर किसी भी वाणिज्यिक संव्यवहार को रोका जा सके । नियम के अधीन प्राधिकार समिति यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि दाता के निकट नातेदार को और यदि निकट नातेदार उपलब्ध नहीं है तब विवाहोपरांत बने नातेदार को इस बाबत अवगत करा दिया गया है कि वह अंग या ऊतक का संदान करने का आशय रखता है, दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच बने संबंध की प्रमाणिकता और संदान किए जाने के कारण तथा संदान करने या न करने से संबंधित इच्छा जैसे पहलुओं को भी सुनिश्चित करना होगा । प्राधिकार समिति द्वारा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जीवित दाता द्वारा जिस व्यक्ति को मानव-अंग का संदान किया जाना है वह उसका निकट नातेदार नहीं है और इसके लिए कोई भी मूल्यवान प्रतिफल नहीं दिया जा रहा है और यह भी सुनिश्चित करना होगा कि प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9(3) की सभी अपेक्षाओं का समाधान कर दिया गया है अर्थात् दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच स्नेह और लगाव है या अन्य किसी विशेष कारण से अंग का संदान किया जा रहा है और यह कि इस संदान में स्पष्ट रूप से कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है जो कि इस अधिनियम के प्रमुख तत्वों में से एक है । (पैरा 58 और 59)

प्रतिरोपण नियम के नियम 33 की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने पर यह पता चलता है कि फार्म सं. 18 के अनुसार प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन प्रदान किया जाता है, तब ऐसा प्राधिकार नियमों के अधीन दी गई शर्तों के अध्यधीन होगा और साथ ही अनुमोदित प्रस्तावित दाता को

सभी चिकित्सा परीक्षण सुसंगत प्रक्रमों पर कराने होंगे ताकि प्रश्नगत अंग संदान करने के लिए उसकी जैविक क्षमता और अनुकूलता सुनिश्चित की जा सके । दाता की शारीरिक और मानसिक जांच की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि उसका स्वास्थ्य ठीक है या नहीं और यह कि वह मानसिक रोग से ग्रसित तो नहीं है । प्राधिकार समिति को दाता और प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन को विनिश्चित करना होगा जिसके लिए उसे प्रतिरोपण अधिनियम और नियम के उपबंधों का कड़े रूप में पालन करना होगा । अस्पताल या रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी की इस संबंध में प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है कि वह मानव-अंग का संदान करने के लिए जैविक क्षमता और अनुकूलता प्रमाणित करे । प्राधिकार समिति प्रतिरोपण नियम के अधीन फार्म सं. 11 के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए आवेदन के संबंध में प्रक्रिया चलाने के लिए अपना विनिश्चय नहीं रोक सकती । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में, अस्पताल ने प्राधिकार समिति द्वारा दिए जाने वाले अनुमोदन के अभाव में दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच अनुकूलता स्थापित करने हेतु प्रक्रिया चलाने में अपनी अक्षमता व्यक्त की है । प्राधिकार समिति ने अस्पताल को यह उत्तर दिया है कि अंतिम रूप से अनुकूलता की प्रक्रिया चलाने के लिए कोई भी अनुमोदन अपेक्षित नहीं है । अभी तक यह पता चलता है कि प्राधिकार समिति ने दाता और प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन पर कोई भी विनिश्चय नहीं किया है जो कि लंबे समय से लंबित है । वर्तमान मामले पर पुन: विचार करने पर पता चलता है कि, जैसाकि पूर्वगामी पैराओं में उपदर्शित किया गया है, प्रत्यर्थी विशेषकर प्राधिकार समिति प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रस्तावित दाता के मानव-अंग का प्रतिरोपण किए जाने संबंधी अनुज्ञा विनिश्चित करने की अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने में असफल रही है । प्राधिकार समिति का यह कानूनी कर्तव्य था कि उस सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष अभिलिखित करे जो उसके समक्ष उपलब्ध थी कि क्या संस्था प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रस्तावित दाता के

मानव-अंग का प्रतिरोपण किए जाने हेतु प्रक्रिया आरंभ करने के लिए प्राधिकृत है या नहीं । प्रतिरोपण नियम के नियम 23 के अधीन कानूनी समिति का यह कर्तव्य है कि प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन को खारिज या मंजूर करे । प्रतिरोपण नियम के नियम 7 के उप-नियम (3) के अधीन स्पष्ट शब्दों में उस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जो नियम 23 के अधीन अंतिम विनिश्चय लेने के लिए अपनाई जाती है । मात्र इस आधार पर कि प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता के बीच अनुकूलता बनाने के लिए प्राधिकार समिति की ओर से किसी भी अनुमोदन की आवश्यकता नहीं थी और प्राइवेट अस्पताल द्वारा कतिपय संसूचना दी गई थी, इसलिए प्राधिकार समिति प्रतिरोपण नियम के नियम 23 के अधीन आवश्यक अनुमोदन मंजूर करने या न करने की प्रक्रिया आरंभ किए जाने का विनिश्चय रोक ही नहीं सकती थी । जैसाकि न्यायालय ने विचार किया है, लोग संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेते हुए बड़ी संख्या में आवेदन कर रहे हैं जिनमें उन मुद्दों को उठाया गया है जिनका संबंध अस्पतालों सहित ऐसे कानूनी निकायों से है जो प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन बहुत-से उपबंधों को कार्यान्वित करने से बचते हैं, न्यायालय ने इस संबंध में सामान्य प्रकृति के कतिपय निदेश जारी करना उचित समझा है जिनका अनुपालन अस्पतालों और प्राधिकार समिति को करना चाहिए । याची के मामले पर विचार करने पर पता चलता है कि प्राधिकार समिति को आज से एक सप्ताह के भीतर प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन को अंतिम रूप से विनिश्चित करने का निदेश दिया जाता है । (पैरा 60, 67, 70 और 78)

न्यायालय ने इस प्रक्रम पर, इस अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन को दृष्टिगत करते हुए किसी जीवित व्यक्ति के अंग का प्रतिरोपण किसी अन्य व्यक्ति के शरीर में किए जाने संबंधी उसके अधिकार पर चर्चा करना उचित समझा है । इस पहलू पर विचार करने

के लिए न्यायालय को यह समझना होगा कि क्या किसी व्यक्ति को अपने शरीर पर वैसा ही अधिकार है जैसा उसकी संपत्ति पर होता है । प्रतिरोपण अधिनियम की स्कीम पर गहराई से विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन नहीं है कि इस अधिनियम के अधीन शव और जीवित शरीर से संबंधित अलग-अलग उपबंध किए गए हैं । उदाहरणार्थ, इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3), जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, के अधीन उस स्थिति को परिकल्पित किया गया है जब ऐसे व्यक्ति की मृत्यु होती है जिसने अपने शरीर के अंग को निकाले जाने के लिए किसी व्यक्ति को प्राधिकृत नहीं किया है और न ही अपनी मृत्यु के पश्चात् अंग निकाले जाने हेतु कोई आपत्ति स्पष्ट की है । शव पर विधिपूर्ण कब्जा रखने वाला कोई व्यक्ति या उस मृतक का कोई निकट नातेदार, जैसा भी मामला हो, को यह अधिकार होगा कि वह रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मृतक के शरीर से अंग निकाले जाने का निर्णय ले सके । वह व्यक्ति रोगोपचार के प्रयोजनार्थ शव से अंग निकाले जाने का सीमित अधिकार अर्जित करेगा । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन जीवित व्यक्ति को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसकी मृत्यु के पश्चात् अपना अंग निकाले जाने के लिए अनुज्ञात किया गया है । अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन जीवित व्यक्ति को नियंत्रित अनुज्ञा प्रदान की गई है कि वह अपनी मृत्यु के पूर्व अपने अंग का संदान कर सके । इसमें कोई बाधा नहीं है कि कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु के पूर्व अपने अंग का संदान करे यदि संदान ऐसे प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रतिरोपण के लिए किया जा रहा है जो उस स्थिति के सिवाय जिसने दाता या प्राप्तिकर्ता विदेशी नागरिक है, उसका निकट नातेदार है । इस अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (1) के अधीन पति या पत्नी, पुत्र, पुत्री, पिता, माता, भाई, बहिन, दादा, दादी, पौत्र या पौत्री आते हैं । एक जीवित व्यक्ति अपने अंग निकाले जाने के लिए अपने जीवनकाल के दौरान ऐसे व्यक्ति को भी प्राधिकृत कर सकता है जो उसका निकट नातेदार नहीं है । प्राप्तिकर्ता के शरीर में चिकित्सीय जांच के परिणामस्वरूप अपने अंग का प्रतिरोपण किए जाने के लिए संदान करने वाले व्यक्ति का अधिकार प्रतिरोपण अधिनियम के मूल उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियंत्रित किया गया है और मानव-अंगों के वाणिज्यिक

संव्यवहार को प्रतिषिद्ध भी किया गया है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) में उल्लिखित अपने अंग का संदान अपने जीवनकाल के दौरान स्नेह और लगाव के आधार पर करने के संबंध में कानूनी प्राधिकारियों द्वारा निर्णय लिए जाने के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत है ताकि ऐसा संदान बिना किसी वाणिज्यिक संव्यवहार के लिए किया जा रहा है या नहीं । यह उल्लेखनीय है कि रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मानव-अंग निकालने और उसका प्रतिरोपण अन्य व्यक्ति के शरीर में किए जाने जैसे मानव कल्याण के लिए उपबंधों की रचना की गई है । तथापि, प्रतिरोपण अधिनियम का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि मानव-अंगों का वाणिज्यिक संव्यवहार का निवारण किया जा सके । यदि कोई व्यक्ति स्वस्थचित्त है, आयु की दृष्टि से भी योग्य है जिस पर कोई दबाव भी नहीं है, अपने जीवनकाल के दौरान विधि के किसी भी उपबंध का भंग किए बिना किसी व्यक्ति के कल्याण के लिए अपने अंग का संदान करने का आशय रखता है, तब उसको उसके इस अधिकार से आसानी से वंचित नहीं किया जा सकता । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस संबंध में कड़ी जांच और अन्वेषण किया जाना चाहिए कि अंग निकाले जाने के लिए किसी प्रकार का कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है और अंग का संदान करने वाले व्यक्ति की सहमति की जांच कर ली गई है । मानव-अंग जिसका प्रयोग रोगोपचार के प्रयोजनार्थ किया जा सकता है को परिभाषित करने के लिए "संपत्ति" उपयुक्त शब्द नहीं है जिसका यह कारण है कि मानव-अंग का मूल्य अथाह है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "मानव-अंग" ऊतक से बनी संरचना है जो यदि पूर्णतया शरीर से निकाली जाए तो उसे शरीर दोबारा नहीं बना सकता । इस प्रकार ऐसा मानव-अंग जिसे कृत्रिम रूप से नहीं बनाया जा सकता वह इतना मूल्यवान है कि उसे "संपत्ति" नहीं कहा जा सकता चाहे वह उस व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान निकाला जाए या उस व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके किसी नातेदार के पास ऐसी स्थिति में हो जब मृतक ने अपना अंग निकाले जाने के लिए किसी को प्राधिकृत नहीं किया हो । प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के प्रयोजनार्थ मानव-अंग का प्रयोग सीमित रूप से ही किया जा सकता है जिसे अधिनियम के अधीन अनुध्यात भी किया गया है ।

ऊपर उल्लिखित चर्चा को अंतिम रूप देने के लिए, मेरी राय में, प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अधीन अपने अंगों के निकाले जाने के लिए किसी को प्राधिकृत करने संबंधी इच्छा सर्वोपरि है । ऐसी इच्छा किसी भी प्रतिफल के आधार पर नहीं होनी चाहिए सिवाय इसके कि प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसके मानव-अंग का प्रयोग किया जाए । यह इच्छा इसके जीवनकाल के दौरान या उसकी मृत्यु के पश्चात् मानव-अंग के निकाले जाने के संबंध में हो सकती है । दाता द्वारा व्यक्त की गई किसी भी इच्छा के न होने की स्थिति में मृतक के निकट नातेदार को उसी प्रकार विनिश्चय लेने का अधिकार होगा जिस प्रकार मृतक को उसके जीवनकाल के दौरान होता परंतु ऐसा तब संभव है जब मृतक ने अपनी इच्छा अन्यथा व्यक्त की हो । कोई जीवित व्यक्ति इस बाबत किसी व्यक्ति को यह प्राधिकार नहीं दे सकता है कि उसके मरणोपंरात उसके मानव-अंग का प्रतिरोपण उसकी इच्छानुसार किसी व्यक्ति विशेष के शरीर में कर दिया जाए और वह दाता केवल अपने जीवनकाल के दौरान ही अपने अंग का प्रतिरोपण अपनी इच्छा के व्यक्ति के शरीर में करा सकता है । (पैरा 61, 65, 66 और 68)

प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने पर न्यायालय की यह राय है कि प्राधिकार अधिनियम अंग संदान किए जाने के लिए दाताओं को प्रोत्साहित करता है या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्राधिकृत व्यक्तियों को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मृतक के अंगों का भंडार किए जाने के लिए भी प्रोत्साहित करता है । इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी का यह कर्तव्य है कि वह मृतक या उस व्यक्ति के निकट नातेदार को जिसकी मस्तिष्क-मृत्यु हो चुकी है, इस बात से अवगत कराए कि उसको यह विकल्प उपलब्ध है कि वह रोगोपचार के लिए मृतक के शरीर से मानव-अंग निकाले जाने को प्राधिकृत कर सकता है । न्यायालय का यह मत है कि लोगों को इस अधिनियम के उपबंधों का बिल्कुल ज्ञान नहीं है । ऐसे लोग भी इस अधिनियम से अनभिज्ञ हैं जो मृत्यु के पश्चात् मानव-अंग निकाले जाने पर विचार करते हुए इसे प्राधिकृत कर सकते थे ।

न्यायालय की यह राय है कि लोगों को इस उपबंध की जानकारी होने से जीवित व्यक्तियों के शरीर से अंग निकाले जाने के मामलों की संख्या में कमी आ सकती है । तद्नुसार, राज्य प्रत्यर्थियों को इस संबंध में कानूनी पदधारियों को उपलब्ध कराई गई सुविधाओं की सूची और आवश्यक निदेश जारी किया जाना उचित माना गया है ताकि इस अधिनियम का लक्ष्य और उद्देश्य पूरा हो सके । (पैरा 73)

सिविल रिट अधिकारिता : 2019 की सिविल रिट याचिका सं. 14947.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री कृष्ण कांत सिंह और श्री अनिल कुमार सिन्हा
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री एस. डी. यादव (अपर महाधिवक्ता), संदीप कुमार, आलोक कुमार **उर्फ** आलोक कुमार शाही और (सुश्री) शमा सिन्हा

आदेश

यह मामला वृक्क के प्रतिरोपण से संबंधित है जिसमें याची सं. 1 को वृक्क की आवश्यकता है और याची सं. 2 वृक्क का संदान करने के लिए तैयार है, जैसाकि अभिकथन किया गया है । तद्नुसार इस निर्णय और आदेश में याची सं. 1 को प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता और याची सं. 2 को प्रस्तावित दाता कहा गया है ।

2. भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल की गई है जिसमें प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिए जाने की ईप्सा की गई है कि वे उनका मामला पटना मेडिकल कालेज और अस्पताल, पटना की प्राधिकार समिति को सिफारिश के साथ अग्रेषित करें ताकि वृक्क के प्रतिरोपण के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र पारस एच. एम. आर. आई. अस्पताल, वेली रोड, पटना (प्रत्यर्थी सं. 6 से 8) द्वारा जारी किया जा सके क्योंकि प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता रीनल विकार का

उपचार इसी अस्पताल में करवा रहा था और इस अस्पताल ने वृक्क का प्रतिरोपण करने से इनकार कर दिया था जबकि प्रस्तावित दाता वृक्क का संदान करने के लिए पहले से तैयार है । याची ने यह निदेश दिए जाने की भी ईप्सा की है कि प्रतिरोपण के पूर्व की जाने वाली प्रस्तावित दाता की चिकित्सीय जांच आरंभ कराई जाए ताकि प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता का जीवन बच सके । पक्षकारों की सुनवाई की गई है ।

3. प्रस्तावित दाता, स्वीकृत रूप से मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "प्रतिरोपण अधिनियम" कहा गया है) की धारा 2(i) के अर्थान्तर्गत प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता का निकट नातेदार नहीं है । प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता वृक्कीय विफलता (रीनल फेलियर) का पुराना रोगी है और इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उसे वृक्क-प्रतिरोपण की आवश्यकता है । प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता का हीमोडायलेसिस नियमित रूप से पारस एच. एम. आर. आई. अस्पताल, वेली रोड, पटना (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "प्राइवेट अस्पताल" कहा गया है) में किया जा रहा था और यह अस्पताल सम्यक् रूप से मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 तथा मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण नियम, 1994 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "प्रतिरोपण नियम" कहा गया है) के अधीन प्राधिकारियों द्वारा मान्यताप्राप्त है ।

4. रिट याचिका में यह अभिकथन किया गया है कि प्राइवेट अस्पताल ने वृक्क का प्रत्यारोपण करने से इनकार कर दिया है जबकि प्रस्तावित दाता बिना किसी शर्त के मात्र इस आधार पर वृक्क का संदान करने के लिए तैयार है कि वह प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता का निकट नातेदार नहीं है । याचियों का यह पक्षकथन है कि प्रस्तावित दाता अपना वृक्क स्वेच्छया संदान करने को तैयार है और दाता यह सब प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता से होने वाले प्रेम और स्नेह के आधार पर कर रहा है । याचियों ने यह अभिकथन किया है कि प्राइवेट अस्पताल ने अनापत्ति प्रमाणपत्र, जो प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अधीन अपेक्षित है, जारी किए जाने के लिए याचियों का आवेदन राज्य प्राधिकार समिति को भेजने से इनकार कर दिया है ।

5. तारीख 29 सितंबर, 2020 को विडियो कान्फ्रेंसिंग द्वारा इस आवेदन की तत्काल सुनवाई की गई और यह सूचित किया गया कि पूरक शपथपत्र फाइल किया जा चुका है जो अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है । तद्नुसार मामला स्थगित कर दिया गया । तत्पश्चात्, तारीख 8 दिसंबर, 2020 को विडियो कान्फ्रेंसिंग के माध्यम से न्यायालय को यह बताया गया कि प्रस्तावित दाता को उच्च शक्तीय कानूनी प्राधिकार समिति, जो प्रतिरोपण अधिनियम और प्रतिरोपण नियम के अधीन गठित की गई है, के समक्ष पेश होना है । न्यायालय ने प्राइवेट अस्पताल की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री संदीप कुमार द्वारा दी गई यह सांत्वना अभिलिखित की कि अस्पताल उन सभी दस्तावेजों को जब भी आवश्यकता होगी तब बिना किसी विलंब के पूरा करेगा जो प्राधिकार समिति के निबंधनों में अपेक्षित हैं ।

6. किसी न किसी कारण से प्राइवेट अस्पताल ने कई तारीखों पर वांछित शल्य-चिकित्सा करने से इनकार किया क्योंकि अस्पताल के अनुसार प्रस्तावित दाता द्वारा संदिग्ध परिस्थितियों में संदान किया जा रहा है न कि प्रेम-स्नेह के आधार पर । प्रश्न यह उठता है कि क्या न्यायालय ऐसी परिस्थितियों में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए परमादेश जारी कर सकता है । पक्षकारों की ओर से प्रतिरोपण अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियमों के अन्तर्गत प्राधिकार समिति के कार्यों के संबंध में विस्तार से दलीलें दी गई हैं ।

7. याचियों की ओर से पूरक शपथपत्र में यह अभिवाक् किया गया है कि तारीख 2 अगस्त, 2019 के ज्ञापन सं. 1253(18) द्वारा राज्य सरकार के स्पष्ट निदेश के बावजूद प्राइवेट अस्पताल ने प्रतिरोपण अधिनियम और नियम के अधीन आवश्यक कार्रवाई नहीं की है । तारीख 2 अगस्त, 2019 के उक्त पत्र की एक प्रति पूरक शपथपत्र के उपाबंध-3 के माध्यम से अभिलेख पर प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा स्वास्थ्य विभाग, बिहार सरकार ने तारीख 29 जून, 2019 के पूर्ववर्ती विभागीय पत्र को निर्दिष्ट करते हुए प्राइवेट अस्पताल को नियम 5(3)(क), (ख), (ग), (घ) और (ङ) के अधीन परिकल्पित नियमित कार्यवाही करने का

निदेश दिया ताकि प्रस्तावित वृक्क-दाता का वृक्क निकालने और प्रस्तावित वृक्क-प्राप्तिकर्ता के शरीर में उसका प्रतिरोपण करने के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी किए जाने की प्रक्रिया आरंभ की जा सके ।

8. तारीख 26 नवंबर, 2020 को याचियों की ओर से एक अन्य पूरक शपथपत्र फाइल किया गया जिसमें यह कथन किया गया कि प्राइवेट अस्पताल ने तारीख 6 अगस्त, 2020 के अपने पत्र द्वारा मुख्य निदेशक, स्वास्थ्य सेवा को यह संसूचित किया है कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिरोपण का यह मामला संदिग्ध है, अत: वे अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी किए जाने की सिफारिश नहीं कर सकते । तथापि, प्राइवेट अस्पताल ने तारीख 6 अगस्त, 2020 के अपने पत्र में निम्न प्रकार उल्लेख किया :–

> "प्रस्तावित दाता के प्रारंभिक साक्षात्कार के दौरान उसने यह स्वीकार किया है कि वह उस मंदिर में पुजारी है जिसकी स्थापना इलाके के प्रभावशाली व्यक्ति श्री शंभू नाथ अर्थात् प्रस्तावित वृक्क-प्राप्तिकर्ता की सहायता से की गई है । इस बात से यह संदेह होता है कि यह सब परोपकार के उद्देश्य से नहीं किया जा रहा है बल्कि इससे प्रतिरोपण अधिनियम के खंड 19(क) और प्रतिरोपण नियम के खंड 6 एफसी (111) का अतिलंघन होता है । इस प्रकार हमने प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता को यह बताया कि राज्य ने प्राधिकार समिति द्वारा प्रतिरोपण हेतु सिफारिश कराना हमारी समझ के परे है ।
>
> चूंकि प्राधिकार समिति इस मामले में अन्तिम प्राधिकारी है इसलिए आपके द्वारा किया गया अनुमोदन सहर्ष प्रतिरोपण करने के लिए हम पर बाध्य होगा ।"

9. तारीख 7 अक्तूबर, 2020 को प्रस्तावित दाता प्राधिकार समिति के समक्ष पेश हुआ जहां उससे कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत करने को कहा गया । याचियों का यह पक्षकथन है कि मुख्य निदेशक स्वास्थ्य विभाग के निदेशानुसार कतिपय परीक्षण कराए गए जिन्हें सीधे स्वास्थ्य विभाग को निम्न टिप्पण के साथ भेजा गया :–

"हमने आपके निदेशानुसार भौतिक, जीव-रासायनिक और रोग विज्ञान संबंधी परीक्षणों के माध्यम से प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता की चिकित्सीय जांच कराई जिससे वृक्कीय प्रतिरोपण के लिए प्राप्तिकर्ता और दाता अर्थात् दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के अनुकूल हैं ।

तथापि, हम प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन किए बिना प्रस्तावित दाता और प्राप्तिकर्ता से संबंधित अंतिम जांच की प्रक्रिया आरंभ नहीं कर सकते ।"

10. यह भी प्रतीत होता है कि प्रस्तावित दाता ने वे ही दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं जो उससे तारीख 7 अक्तूबर, 2020 के प्राधिकार समिति के विनिश्चय के आलोक में मांगे गए हैं ।

11. यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तावित दाता से प्राधिकार समिति द्वारा निम्न दस्तावेज प्रस्तुत करने को कहा गया :–

"(i) पारस अस्पताल द्वारा जारी सिफारिश पत्र की मूल प्रति ;

(ii) पारस अस्पताल का रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र ;

(iii) प्रतिरोपण नियम 5(3)(ख) के परन्तुक के अनुसरण में जीवित प्रस्तावित दाता का फिटनेस प्रमाणपत्र जो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा प्ररूप-4 के अनुसार जारी किया गया है ।"

12. प्राधिकार समिति ने तारीख 12 नवंबर, 2020 को हुई अपनी बैठक में पारस अस्पताल से प्राप्त तारीख 4 नवंबर, 2020 के पत्र पर विचार किया । प्राधिकार समिति ने यह अभिलिखित किया है कि वृक्क प्रतिरोपण के लिए अनुकूल मैच बिठाने के प्रयोजनार्थ प्राधिकार समिति द्वारा जारी कोई भी अनापत्ति प्रमाणपत्र आवश्यक नहीं है ।

13. उपरोक्त प्रक्रिया के दौरान प्राइवेट अस्पताल में प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता की भौतिक, जीव-रासायनिक और रोग विज्ञान संबंधी प्राथमिक चिकित्सीय जांच के पश्चात् यह पाया गया कि उक्त परीक्षणों से यह पता चलता है कि दाता और प्राप्तिकर्ता वृक्कीय प्रतिरोपण के लिए अनुकूल हैं, किंतु उक्त अस्पताल ने आगे कार्यवाही

करने के लिए अपनी अक्षमता प्रकट की क्योंकि अभी तक प्राधिकार समिति की ओर से अनुमोदन नहीं किया गया था । प्राधिकार समिति ने यह स्पष्ट किया कि वृक्कीय प्रतिरोपण हेतु प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता का मैच मिलाने के लिए प्राधिकार समिति की ओर से अनुमोदन किया जाना अपेक्षित नहीं है । इससे प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हुआ ।

14. यह उल्लेखनीय है कि आरंभ में न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन गठित उच्च स्तरीय कानूनी प्राधिकार समिति को दृष्टिगत करते हुए यह संविवाद तय करना होगा कि क्या प्रतिरोपण की अनुमति दी जा सकती है या नहीं । चूंकि प्रत्यर्थियों ने संवेदनशील वर्तमान मुद्दे को तय करने में मानवीय नहीं बल्कि तकनीकी और यांत्रिक दृष्टिकोण अपनाया है, इसलिए इस न्यायालय को प्रतिरोपण अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियमों के अन्तर्गत कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को स्पष्ट करने वाले कानूनी उपबंधों पर विचार करना पड़ा है ।

15. मानव-अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 के इतिहास पर विचार करने पर यह उल्लेखनीय है कि यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 252 के खंड (1) और गोवा, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र के विधान-मंडल द्वारा पारित संकल्प के अनुसरण में अधिनियमित किया गया है क्योंकि संसद् को मानव-अंगों और ऊतकों को प्रतिरोपण हेतु हटाए जाने, भंडार करने तथा उनके वाणिज्यिक प्रयोग को रोकने से संबंधित विधि की रचना करने के लिए विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं है ।

16. बिहार राज्य में प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के लागू होने के संबंध में इस मामले में विस्तार से सुनवाई किए जाने के पश्चात् कुछ प्रश्न सामने आते हैं । मेरा ध्यान स्वास्थ्य विभाग, बिहार सरकार द्वारा कतिपय अधिसूचनाओं की ओर दिलाया गया है जिनसे यह उपदर्शित होता है कि राज्य विधान-मंडल के दोनों सदनों द्वारा पारित संकल्पों के अनुसार प्रतिरोपण अधिनियम यह राज्य के लिए भी लागू किया गया है ।

इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 252(1) के उपबंधों के अनुसरण में बिहार राज्य में संसद् द्वारा अधिनियमित प्रतिरोपण अधिनियम के लागू किए जाने के संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता है । प्रतिरोपण अधिनियम में पहला संशोधन 2011 के संशोधन अधिनियम सं. 16 द्वारा किया गया जो जम्मू-कश्मीर तथा आंध्र प्रदेश राज्य को छोड़कर शेष सभी राज्यों द्वारा अपनाया गया है और जम्मू-कश्मीर तथा आंध्र प्रदेश राज्य ने मानव-अंगों के प्रतिरोपण हेतु उन्हें हटाए जाने, भंडार करने तथा उनका वाणिज्यिक प्रयोग किए जाने से रोकने हेतु अपना विधान अलग-से अधिनियमित किया है ।

17. निम्न दो उद्देश्यों और कारणों के साथ पठित प्रतिरोपण अधिनियम की स्कीम का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर कोई भी संदेह प्रतीत नहीं होता है :–

> "(i) रोगोपचार हेतु मानव-अंगों के हटाए जाने, भंडार करने और प्रतिरोपण करने का विनियमन ;
>
> (ii) मानव-अंगों के वाणिज्यिक प्रयोग को रोकना ।"

18. प्रतिरोपण अधिनियम की स्कीम से यह पता लगाना कठिन नहीं है कि भारत में मानव-अंगों के व्यापार और उसके परिणामस्वरूप समाज के दुर्बल वर्ग के शोषण की खबरों को ध्यान में रखते हुए इस अधिनियम में 2011 के संशोधन अधिनियम सं. 16 द्वारा कतिपय संशोधन किए गए हैं जो तारीख 10 जनवरी, 2014 से प्रभावी हैं । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 2(i) के अधीन "निकट नातेदार" की परिभाषा में विस्तार करने और परिभाषा वाले खंड और अन्य धाराओं में "मानव-अंगों" के साथ "ऊतक" शब्द जोड़ने के अतिरिक्त कुछ बड़े संशोधन, उपरोक्त संशोधन अधिनियम सं. 16 के अनुसार इस प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 में किए गए हैं ताकि स्पष्ट रूप से मानव-अंगों का व्यापार रोका जा सके ।

19. संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन शर्तों और प्रतिबंधों के अन्तर्गत रोगोपचार के लिए किसी व्यक्ति की मृत्यु के पूर्व या उपरांत उसके शरीर से अंगों का निकाला जाना

रोगोपचार के लिए अनुज्ञात किया गया है । कुछ ऐसे उपबंध हैं जो उक्त प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर से निकाले जाने के बारे में है जिनके अन्तर्गत ऐसा तभी संभव है जब कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु के पूर्व किसी अंग या ऊतक या दोनों को निकालने के लिए अपनी इच्छा व्यक्त करता है । प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति को किसी व्यक्ति का शव अपने कब्जे में रखने और उसके शरीर के किसी अंग या ऊतक या दोनों का उपयोग रोगोपचार हेतु करने के लिए अनुज्ञात किया गया है ।

20. ऐसी स्थिति में जब कोई जीवित व्यक्ति अपने जीवनकाल के दौरान अपने किसी निकट नातेदार के शरीर में अपने अंग का प्रतिरोपण कराने के लिए प्राधिकृत करता है तब प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अधीन विधि की दृष्टि से कोई भी अड़चन नहीं आती है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है वर्तमान मामला प्रस्तावित दाता से संबंधित है जिसने अपना वृक्क अपने जीवनकाल के दौरान प्रस्तावित दाता के शरीर में प्रतिरोपण कराने हेतु दिए जाने का निवेदन किया है जोकि प्रस्तावित दाता के अनुसार प्रेम और स्नेह के आधार पर किया जा रहा है । दाता के संदान करने की इच्छा का आधार प्रेम और स्नेह ही है या नहीं, इस संबंध में कोई सामग्री न होने के कारण ऐसा पता चलता है कि प्रतिकर या दबाव में आकर संदान किया जा रहा है और ऐसी स्थिति में प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन अंग संदान करने के अधिकार को प्रतिषिद्ध किया जा सकता है या नहीं ? यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है जो वर्तमान रिट याचिका में विनिश्चित किया जाना है ।

21. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन दाता अपनी मृत्यु के पूर्व अपने किसी अंग को ऐसे व्यक्ति (प्राप्तिकर्ता) के शरीर में प्रेम और लगाव या अन्य किसी आधार पर प्रतिरोपण के लिए हटाए जाने को प्राधिकृत करता है जो उसका निकट नातेदार नहीं है । ऐसी स्थिति में प्राधिकार समिति की पूर्वानुमति आवश्यक है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (5) और (6) के अधीन प्राधिकार समिति के लिए प्रक्रिया का उपबंध किया गया है जिसके आधार पर वह मानव-अंगों के हटाए जाने हेतु फाइल किए गए आवेदनों पर विचार

करती है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 तथा इस अधिनियम की धारा 3 के अधीन सुसंगत उपबंध उन परिस्थितियों के बारे में है जब दाता प्राप्तिकर्ता का निकट नातेदार नहीं है और वह रोगोपचार के प्रयोजनार्थ अपने जीवनकाल में ही अपने अंग का संदान करने का इच्छुक है ।

22. न्यायालय ने विधायी आशय को समझने के लिए प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन मुख्य उपबंधों का संक्षिप्त उल्लेख करना उचित समझा है । इन उपबंधों के परिशीलन से यह पता चलता है कि क्या प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन कोई व्यक्ति अपने शरीर या किसी अंग का प्रयोग अपनी संपत्ति के रूप में कर सकता है या नहीं, अत: रोगोपचार के प्रयोजनार्थ किसी अन्य व्यक्ति को अधिकारस्वरूप अंग का स्थानांतरण करने के लिए इस शर्त पर अनुज्ञात किया गया है कि ऐसे स्थानांतरण में किसी भी प्रकार का प्रतिफल नहीं लिया गया है क्योंकि ऐसा प्रतिफल लेना प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रतिषिद्ध है । जैसाकि आरंभ में ही उल्लेख किया गया है, प्रतिरोपण अधिनियम दो उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधिनियमित किया गया है अर्थात् (i) रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मानव-अंगों का हटाया जाना, भंडार करना और प्रतिरोपण करना ; और (ii) मानव-अंगों के वाणिज्यिक संव्यवहार को रोकना ।

23. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) किसी व्यक्ति को उसकी मृत्यु के पूर्व मानव-अंग या ऊतक या दोनों को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ निकाले जाने के लिए प्राधिकृत करती है । तथापि, किसी व्यक्ति को उसकी मृत्यु के पूर्व दी जाने वाली ऐसी स्वतंत्रता प्रतिरोपण अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियमों के अन्तर्गत विहित "रीति" शर्तों के अध्यधीन नियंत्रित की गई है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) मानव-अंग दाता की मृत्यु के पूर्व अंग निकाले जाने के संबंध में है । तथापि, कोई व्यक्ति अपने जीवनकाल के दौरान यह प्राधिकृत कर सकता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसका अंग निकाला जा सकता है । यह स्थिति प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) द्वारा

शासित है जिसके अंतर्गत यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी दाता ने दो या दो से अधिक साक्षियों (जिनमें से एक निकट नातेदार है) एकमत रूप से अपनी मृत्यु के पूर्व यह प्राधिकृत किया है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसके शरीर का कोई अंग या ऊतक या दोनों निकाले जा सकते हैं ; तब वह व्यक्ति जिसके पास उस दाता के शव का विधिपूर्ण कब्जा है, रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी को सभी युक्तियुक्त सुविधाएं उपलब्ध कराएगा ताकि दाता के शव से रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मानव-अंग निकाला जा सके । वह व्यक्ति जिसके पास दाता के शव का विधिपूर्ण कब्जा है, वह मृतक दाता की अंग निकाले जाने संबंधी इच्छा होने के बावजूद वह तब तक अंग निकाले जाने को अनुज्ञात नहीं कर सकता जब तक कि उसे यह विश्वास न हो जाए कि दाता ने तत्पश्चात् भी अपने प्राधिकार का प्रतिसंहरण नहीं किया था ।

24. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) और उपधारा (2) का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर, जो वर्ष 1994 के मूल अधिनियमन में सारभूत रूप से विद्यमान है जिसमें "मानव-अंगों" के साथ "या ऊतकों या दोनों" को यथास्थिति जोड़ा गया था, किसी व्यक्ति की इच्छा उसका अंग रोगोपचार हेतु निकाले जाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) और (2) के अधीन यह अनुध्यात है कि जहां किसी व्यक्ति ने अपनी इच्छा व्यक्त की हो और अपने जीवनकाल के दौरान किसी को इस संबंध में प्राधिकृत किया हो कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका अंग निकाला जा सकता है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन उस स्थिति का उल्लेख किया गया है जिसमें किसी व्यक्ति की मृत्यु इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकार दिए बिना हो जाती है । ऐसी परिस्थितियों में यदि वह व्यक्ति जिसके पास संदान करने वाले व्यक्ति के शव का विधिवत् रूप से कब्जा है, रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उस मृतक के किसी भी मानव-अंग के हटाए जाने का प्राधिकार दे सकता है ।

शव पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति को निम्न शर्तों के अधीन

रोगोपचार के प्रयोजनार्थ किसी भी मानव-अंग के हटाए जाने हेतु प्राधिकृत करने की सक्षमता है :–

> "(i) मृतक द्वारा रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके अंगों का प्रयोग किए जाने हेतु अनापत्ति व्यक्त की गई हो ।
>
> (ii) शव पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति के समक्ष यह विश्वास करने का कोई कारण न हो कि मृतक के किसी निकट नातेदार को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मृतक के अंग निकाले जाने पर कोई आपत्ति है ।"

25. क्या किसी व्यक्ति का शव उस व्यक्ति की संपत्ति बन जाता है जिसके पास उस शव का विधिपूर्ण कब्जा है, अतः, क्या इस आधार पर रोगोपचार के प्रयोजनार्थ किसी भी मानव-अंग के निकाले जाने के लिए उसे प्राधिकृत किया जा सकता है ? यह ऐसा प्रश्न है जिस पर विचार किया जाना चाहिए । इस तथ्य का परिशीलन सूक्ष्मता से किया जाना चाहिए कि मानव-अंग के प्रतिरोपण को लेकर कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया जा रहा है और किया जाने वाला प्रतिरोपण, प्रतिरोपण अधिनियम के अनुसार विधिमान्य संव्यवहार के अधीन है ।

26. क्या किसी जीवित या मृत व्यक्ति के शरीर से संदान या उपहार या दान के रूप में मानव-अंग का स्थानांतरण किया जाना विल, उपहार या दान के रूप में किए गए संपत्ति के स्थानांतरण के समतुल्य है ? इस मामले में रोगोपचार के प्रयोजनार्थ अंग का संदान किए जाने के संबंध में प्रस्तावित दाता की स्पष्ट इच्छा को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय की राय में इस रिट याचिका में के मुख्य मुद्दे को विनिश्चित करने के लिए इस प्रश्न पर विचार किया जाना आवश्यक है कि क्या प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन गठित प्राधिकार समिति द्वारा इस प्रयोजन को अनदेखा किया जा सकता है ?

27. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (4) के अधीन यह घोषणा की गई है कि इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन दिया गया प्राधिकार रोगोपचार के प्रयोजनार्थ

मानव-अंग हटाए जाने के लिए "पर्याप्त वारंट" होगा । तथापि, इस धारा के अधीन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को अंग निकालने के लिए प्राधिकृत नहीं किया जा सकता । कॉर्निया के एकत्रीकरण के लिए उस टेक्नीशियन को प्राधिकृत किया गया है जिसके पास प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (4) के उपबंधों के अनुसरण में योग्यता और अनुभव हो ।

28. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (5) और (6) के अधीन चिकित्सा व्यवसायी को इस बाबत आबद्ध किया गया है कि व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् मानव-अंग या ऊतक या दोनों के निकाले जाने के पूर्व इस संबंध में समाधान हो गया है कि ऐसे शरीर में जीवन विलुप्त हो चुका है या मस्तिष्क-मृत्यु (ऐसी मृत्यु जिसमें मस्तिष्क मृत हो जाता है और हृदय, फेफड़े और यकृत आदि काम करते रहते हैं) सम्यक् रूप से प्रमाणित हो चुकी है । मस्तिष्क-मृत्यु के प्रमाणन की प्रक्रिया प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (6) में उपबंधित की गई है ।

29. यह उल्लेखनीय है कि प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (7) जो कि एक 'सर्वोपरि खंड' है, के अधीन यह उपबंध किया गया है कि 8 वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति की मस्तिष्क-मृत्यु के मामले में, माता-पिता में से कोई भी मृतक के शरीर से मानव-अंग निकाले जाने का प्राधिकार दे सकता है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की 'उपधारा (7) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए' 18 वर्ष से कम आयु वाले व्यक्ति के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है जिस पर प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन विचार नहीं किया गया है ताकि रोगोपचार सहित किसी भी प्रयोजन के लिए उसका अंग निकाले जाने के लिए निर्णय ले सके और उसे प्राधिकृत कर सके । तथापि, मृतक के माता-पिता में से किसी को भी प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (7) के अधीन मानव-अंग निकाले जाने का प्राधिकार देने की शक्ति प्राप्त है । अतः, क्या यह कहा जा सकता है कि 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति के शरीर से, उसकी मस्तिष्क-मृत्यु होने पर, किसी अंग या ऊतक या दोनों के निकाले जाने के बाबत प्राधिकार दिए जाने के सीमित प्रयोजन के लिए माता-पिता का शव पर स्वामित्व होता है ?

30. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 4 उस प्राधिकार को तब वापस ले लेती है जो इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अधीन दिया गया है जब तत्समय प्रवृत्त किसी भी विधि के उपबंधों के अनुसरण में ऐसे शव की मृत्युसमीक्षा की जानी आवश्यक हो । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति की योग्यता जो प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन दाता के शव पर विधिवत् रूप से कब्जा रखता है, भले ही दाता ने लिखित रूप में एकमत रूप से मानव-अंग निकाले जाने का प्राधिकार दिया हो, प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 4 द्वारा उसका कब्जा समाप्त किया जा सकता है जिसके लिए तत्समय प्रवृत्त किसी भी विधि के उपबंधों के अनुसरण में मृत्युसमीक्षा अपेक्षित हो जाती है ।

31. वह व्यक्ति जिसे मृतक का शव दफन करने, दाह करने या अन्य किसी निपटारे के लिए निहित किया जाता है, ऐसे शव में से किसी भी मानव-अंग के निकाले जाने को प्राधिकृत नहीं कर सकता । इसका स्पष्ट कारण यह है कि ऐसे व्यक्ति को शव पर कब्जा रखने का प्राधिकार मात्र शव दफन करने, उसका दाह करने या अन्य किसी प्रकार उसका निपटारा करने के लिए दिया जाता है ।

32. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 5 उस स्थिति के बारे में है जिसमें अस्पताल या कारागार में रखा हुआ किसी व्यक्ति का शव उस व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् 48 घंटों के भीतर भी उसके किसी निकट नातेदार द्वारा मांगा नहीं जाता है । ऐसी स्थिति में अस्पताल या कारागार के भारसाधक या भारसाधक द्वारा इस संबंध में सम्यक् रूप से प्राधिकृत कर्मचारी उस शव से मानव-अंग या ऊतक या दोनों के निकाले जाने को प्राधिकृत कर सकता है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 5 की उपधारा 2 उस प्राधिकार को तब प्रतिषिद्ध करती है, जो धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन दिया गया है, जब ऐसा प्राधिकार देने के लिए सशक्त व्यक्ति के पास विश्वास करने का यह कारण हो कि मृतक का कोई निकट नातेदार शव लेने का दावा कर सकता है चाहे ऐसा नातेदार प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट समय के भीतर शव लेने का दावा न कर सका हो ।

क्या यह कहा जा सकता है कि किसी मानव-अंग के निकाले जाने को प्राधिकृत करने के सीमित प्रयोजन हेतु अस्पताल या कारागार में रखा शव, अस्पताल या कारागार की संपत्ति मानी जाएगी, यदि कारागार या अस्पताल के भारसाधक के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि मृतक के किसी निकट नातेदार द्वारा शव का दावा किए जाने की संभावना है ? क्या प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि मृतक के निकट नातेदार, जो शव का दावा कर सकते हैं, शव के वास्तविक स्वामी हैं और विश्वास करने का यह कारण होने पर ऐसे नातेदार द्वारा शव का दावा किए जाने की संभावना है, तब क्या प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अस्पताल या कारागार के भारसाधक द्वारा दी जाने वाली अनुज्ञा समाप्त हो जाती है ?

33. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 6 के अधीन चिकित्सा-विधिक या रोग-विज्ञान संबंधी प्रयोजन के लिए मानव-अंग निकाले जाने के संबंध में है । इस उपबंध के अधीन यह दोहराया गया है कि मृतक की इच्छा सर्वोपरि है और रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मानव-अंग निकाले जाने को तब प्राधिकृत करती है जब इस प्रकार मानव-अंग निकाले जाने को प्राधिकृत करने वाले व्यक्ति का यह समाधान हो जाता है कि मृतक ने अपनी मृत्यु के पूर्व इस संबंध में कोई आक्षेप नहीं किया था । यह भी दोहराया जाता है कि यदि अंग दाता ने अपनी मृत्यु के पश्चात् रोगोपचार के लिए अपने किसी भी अंग का प्रयोग किए जाने हेतु कोई प्राधिकार दिया था, तो ऐसे प्राधिकार का उसकी मृत्यु के पूर्व प्रतिसंहरण न किया गया हो ।

प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 और धारा 6 के उपबंधों का संचयी रूप से परिशीलन करने पर यह आसानी से देखा जा सकता है कि इस अधिनियम के अधीन उस व्यक्ति की योग्यता को उसकी मृत्यु के पूर्व या पश्चात् रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसका अंग निकाले जाने के लिए मान्य ठहराया है । उसकी इच्छा या अनिच्छा, उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका अंग निकाले जाने के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है । मृतक की ओर से कोई आक्षेप न किए जाने की स्थिति में उसका निकट

नातेदार, शव पर विधि पूर्ण कब्जा रखने वाले व्यक्ति और ऊपर उल्लिखित कुछ अन्य परिस्थितियां उसके शव में से मानव-अंग निकाले जाने को प्राधिकृत कर सकते हैं ।

34. क्या उपबंधों से यह पता चलता है कि प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति का उसके शरीर पर स्वामित्व होने को मान्य ठहराया गया है, अर्थात् किसी मानव-अंग या ऊतक या दोनों को उसके शव से रोगोपचार के सीमित प्रयोजन के लिए, बिना किसी वाणिज्यिक संव्यवहार के, निकाले जाने के लिए, क्या उसकी इच्छा को मान्य ठहराया गया है, ऐसी सहमति/इच्छा/अनुज्ञा का निष्पादन क्या उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार संपत्ति के मामले में विल का किया जाता है ? क्या किसी भी प्रकार से इसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि किसी व्यक्ति द्वारा विल न किए जाने की स्थिति में उसका निकट नातेदार, अधिनियम के अर्थांतर्गत निर्वसीयत उत्तराधिकार की प्रकृति में विरासत के अधिकार जैसा कोई अधिकार अर्जित कर सकता है और इस प्रकार प्रत्यारोपण अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में क्या वह रोगोपचार के लिए मानव-अंग निकाले जाने को प्राधिकृत करने की योग्यता रखता है ।

35. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 7 के अधीन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी को किसी व्यक्ति के शरीर से मानव-अंग या ऊतक निकाले जाने के पश्चात् उनके परिरक्षण के लिए विहित किए जा सकने वाली कार्यवाही के लिए आबद्ध किया गया है । इस अधिनियम की धारा 8, जो कि एक सेविंग क्लोज है, के अधीन यह माना गया है कि प्रतिरूपण अधिनियम के पूर्वगामी उपबंधों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है जिसका यह अर्थ लगाया जा सके कि मृतक के शव या उसके किसी अंग से संबंधित संव्यवहार विधिविरुद्ध है और ऐसा संभव और सब विधि पूर्ण होता जब यह अधिनियम पारित न किया गया होता ।

36. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 के उपबंधों का परिशीलन करने के पूर्व इस प्रक्रम पर उपधारा (1-क) और (1-ख) पर विचार किया जाना चाहिए जो 2011 के संशोधन अधिनियम सं. 16 द्वारा पुर:स्थापित किया गया था और 10 जनवरी 2014 से प्रवृत्त हुआ था ।

उपधारा (1-क) के अधीन अस्पताल में कार्यरत रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी का कर्तव्य है कि आईसीयू में भर्ती व्यक्ति या उसके निकट नातेदार को यह सुनिश्चित करें कि उसने अपनी मृत्यु के पूर्व कभी अपने शरीर का कोई अंग या ऊतक या दोनों के निकाले जाने को प्राधिकृत किया है जैसा कि उपधारा (2) में अनुबंधित है । प्रतिरोध अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन यह विहित किया गया है कि अस्पताल विहित की गई रीति में ऐसे प्राधिकार के लिए दस्तावेज तैयार कराने की अनुज्ञा देगा । इस उपधारा के अधीन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी का यह कर्तव्य है कि वह आईसीयू में भर्ती उस व्यक्ति या उसके निकट नातेदार को इस विकल्प से अवगत कराएं कि वह मानव-अंग या ऊतक या दोनों का दान किए जाने को प्राधिकृत कर भी सकता है और नहीं भी ।

37. उपधारा (1-ख) यह भी स्पष्ट करती है कि उपधारा (1-क) के अधीन उल्लिखित कर्तव्य उन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी को भी लागू होगा जो ऐसे अस्पताल में कार्यरत हैं जो प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत नहीं है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा (1-क) और (1-ख) के अधीन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी का यह कर्तव्य है कि जो व्यक्ति आईसीयू में भर्ती है उसे या उसके निकट नातेदार को इस बाबत अवगत कराएं कि वह अपने शरीर से मानव-अंग का संदान किए जाने या उसका भंडार किए जाने या किसी के शरीर में प्रतिरोपित किए जाने के लिए प्राधिकृत करने हेतु उसके पास विकल्प उपलब्ध है । इस प्रकार प्रतिरोपण अधिनियम का उद्देश्य मात्र मानव-अंग शरीर से निकालकर अभावग्रस्त व्यक्ति के शरीर में प्रतिरोपित करना नहीं है अपितु इसका भंडार करना भी है । उपधारा (1-क) और (1-ख) का उद्देश्य किसी व्यक्ति को इस बाबत प्रोत्साहित करना प्रतीत होता है कि वह अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने अंगों का संदान करें । वास्तव में, (1-क) और (1-ख) के उपबंधों के अधीन रोगोपचार हेतु मृतकों के उपलब्ध शवों से अधिक से अधिक मानव-अंग निकाले जा सकें । संभवत: इसका मुख्य कारण यह है कि बायोटेक्नोलॉजी में उन्नति होने पर मानव-अंगों के प्रत्यारोपण में सारभूत वृद्धि हुई है और दूसरी ओर इस प्रयोजन के लिए मानव-अंगों की उपलब्धता में परिणामिक कमी भी आई है । इन

परिस्थितियों में मानव-अंगों की अनुपलब्धता से इनका क्रय-विक्रय बाजार में आरंभ हो सकता है । इस पृष्ठभूमि में, किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर मानव-अंगों के संदान को प्रोत्साहित करने के लिए, जो उस व्यक्ति या उसके निकट नातेदार की इच्छा पर निर्भर होगा, ऐसा प्रतीत होता है कि उपधारा (1-क) और (1-ख) को पुर:स्थापित किया गया है ।

38. 2011 के संशोधन अधिनियम सं. 16 के उद्देश्यों और कारणों पर विचार करने पर पता चलता है कि इस अधिनियम के पैरा 4(iii) के अधीन ऐसे संशोधन के प्रयोजन को निम्न प्रकार व्यक्त किया गया है :–

> "(iii) 'आईसीयू' या 'ट्रीटिंग मेडिकल स्टाफ' को दृष्टिगत करते हुए धारा 3 में संशोधन किया गया है कि वह मस्तिष्क-मृत्यु वाले रोगियों के नातेदारों से मानव-अंग का संदान और कॉर्निया का एकत्रीकरण किए जाने का निवेदन करें और यह कार्य प्रशिक्षण प्राप्त टेक्नीशियन द्वारा किया जाएगा । इसके अतिरिक्त यदि मस्तिष्क-मृत्यु का प्रमाणपत्र जारी किए जाने के लिए तंत्रिका-शल्य-चिकित्सक या तंत्रिका-चिकित्सक के उपलब्ध न होने पर, शल्य-चिकित्सक या चिकित्सक और नि:श्चेतक या गहन-देखरेख करने वाले चिकित्सक को मेडिकल बोर्ड में सम्मिलित किया जाना चाहिए ।"

39. इस प्रकार रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायी का यह आज्ञापक कर्तव्य है कि वह प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1-क) के अधीन अपेक्षित तथ्यों को सुनिश्चित करे ।

40. यद्यपि यह उपबंध वर्तमान मामले के मुद्दे से सीधा जुड़ा हुआ प्रतीत नहीं होता है जो, जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9(3) द्वारा शासित है, और इस मुद्दे पर विचार प्रतिरोपण अधिनियम के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है और उस संदर्भ को भी दृष्टिगत किया गया है जिसके अधीन उपबंध अधिनियमित किए गए हैं । इस अधिनियम के अंतर्गत उस संवेदनशीलता पर भी विचार किया गया है जिसके अधीन प्राधिकारियों/पदधारियों/हितधारकों से कार्य करने की प्रत्याशा की जाती है ताकि विधायी उद्देश्य पूरा हो सके और अधिनियम का प्रयोजन अर्थपूर्ण बन सके ।

41. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 इस मुद्दे से संबंधित है जो निम्न प्रकार है :–

"धारा 9. **मानव-अंगों के निकाले जाने और प्रतिरोपण के संबंध में निर्बंधन** – (1) उपधारा (3) में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, किसी दाता के शरीर से उसकी मृत्यु के पहले निकाला गया कोई मानव-अंग प्राप्तिकर्ता के शरीर में तब तक प्रतिरोपित नहीं किया जाएगा जब तक कि दाता प्राप्तिकर्ता कोई निकट नातेदार न हो ।

[(1-क) जहां दाता या प्राप्तिकर्ता जो निकट नातेदार है, विदेशी राष्ट्रिक है वहां प्राधिकार समिति का पूर्वानुमोदन मानव-अंग या ऊतक या दोनों को निकालने या प्रतिरोपण करने से पूर्व अपेक्षित होगा :

परंतु यदि प्राप्तिकर्ता विदेशी राष्ट्रिक है और दाता कोई भारतीय राष्ट्रिक है तो प्राधिकार समिति ऐसे निकाले जाने या प्रतिरोपण का तब तक अनुमोदन नहीं करेगी जब तक कि वे निकट नातेदार न हों ।

(1-ख) किसी अप्राप्तवय के शरीर से उसकी मृत्यु से पूर्व कोई मानव-अंग या ऊतक या दोनों, प्रतिरोपण के प्रयोजन के लिए उस रीति के सिवाय, जो विहित की जाए, निकाले नहीं जाएंगे ।

(1-ग) किसी मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्ति के शरीर से उसकी मृत्यु के पहले प्रतिरोपण के प्रयोजन के लिए कोई मानव-अंग या ऊतक या दोनों नहीं निकाले जाएंगे ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए –

(i) "मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्ति" पद के अंतर्गत, यथास्थिति, मानसिक रुग्णता या मानसिक मंदता भी है ;

(ii) "मानसिक रुग्णता" पद के अंतर्गत मनोभ्रंश, खंडित मनस्कता और ऐसी अन्य मानसिक दशा भी है, जो व्यक्ति को बौद्धिक रूप से नि:शक्त बनाती है ;

(iii) "मानसिक मंदता" पद का वह अर्थ होगा, जो नि:शक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (1996 का 1) की धारा 2 के खंड (द) में है ।]

(2) जहां कोई दाता, धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने मानव-अंगों में से किसी के निकाले जाने के लिए प्राधिकृत करता है या कोई ऐसा व्यक्ति, जो किसी मृत व्यक्ति के शरीर से किसी मानव-अंग के निकाले जाने के लिए प्राधिकार देने के लिए सक्षम या सशक्त है, ऐसे निकाले जाने को प्राधिकृत करता है, वहां मानव-अंग निकाला जा सकेगा और किसी ऐसे प्राप्तिकर्ता के, जिसे ऐसे मानव-अंग की आवश्यकता हो, शरीर में प्रतिरोपित किया जा सकेगा ।

(3) यदि कोई दाता, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अपनी मृत्यु के पहले अपने मानव-अंगों में से किसी के ऐसे प्राप्तिकर्ता के, जो निकट नातेदार नहीं हैं, जैसाकि दाता द्वारा प्राप्तिकर्ता के प्रति स्नेह या लगाव के कारण या किसी अन्य विशेष कारण से विनिर्दिष्ट किया गया है, शरीर के प्रतिरोपण के लिए निकाले जाने के लिए प्राधिकृत करता है, तो ऐसा मानव-अंग, प्राधिकरण समिति के पूर्व अनुमोदन के बिना, निकाला और प्रतिरोपित नहीं किया जाएगा ।

[(3-क) उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां –

(क) कोई दाता अपनी मृत्यु के पहले किसी प्राप्तिकर्ता को, जो उसका निकट नातेदार है, अपने मानव-अंग या ऊतक या दोनों का संदान करने के लिए सहमत होता है किंतु ऐसा दाता प्राप्तिकर्ता के लिए दाता के रूप में जैविक रूप से अनुरूप नहीं है ; और

(ख) द्वितीय दाता अपनी मृत्यु के पहले ऐसे प्राप्तिकर्ता को जो उसका निकट नातेदार है, अपने मानव-अंग या ऊतक

या दोनों का संदान करने के लिए सहमत है किंतु ऐसा दाता, प्राप्तिकर्ता के लिए दाता के रूप से जैविक रूप से अनुरूप नहीं है ; वहां

(ग) प्रथम दाता, जो द्वितीय प्राप्तिकर्ता के लिए दाता के रूप में जैविक रूप से अनुरूप है और द्वितीय दाता, प्रथम प्राप्तिकर्ता के लिए मानव-अंग या ऊतक या दोनों के दाता के रूप में जैविक रूप से अनुरूप है और दाता और प्राप्तिकर्ता के पूर्वोक्त समूह में दोनों दाता तथा दोनों प्राप्तिकर्ता, समूह में ऐसी जैविक अनुरूपता के अनुसार उस समूह में ऐसे मानव-अंग या ऊतक या दोनों का संदान करने और प्राप्त करने के लिए एकल करार करते हैं, तो, ऊपर निर्दिष्ट करार के अनुसार मानव-अंग या ऊतक या दोनों का निकाला जाना और प्रतिरोपण, प्राधिकार समिति के पूर्वानुमोदन के बिना नहीं किया जाएगा ।]

[(4)(क) प्राधिकरण समितियों की संरचना ऐसी होगी, जो समय-समय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ।

(ख) राज्य सरकार और संघ राज्यक्षेत्र, अधिसूचना द्वारा, इस धारा के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक प्राधिकार समितियां गठित करेंगी, जो ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेंगी, जिनको राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों द्वारा ऐसे निबंधनों और शर्तों पर नामनिर्दिष्ट किया जाए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं ।]

(5) दाता और प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से ऐसे प्ररूप में और ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, किए गए आवेदन पर, प्राधिकार समिति, जांच करने के पश्चात् और स्वयं का यह समाधान हो जाने के पश्चात् कि आवेदकों के इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों की सभी अपेक्षाओं का अनुपालन कर दिया है, आवेदकों के मानव-अंग के निकाले जाने और प्रतिरोपण के लिए अनुमोदन कर सकेगी ।

(6) यदि, जांच के पश्चात् और आवेदकों की सुनवाई का

अवसर देने के पश्चात् प्राधिकार समिति का यह समाधान हो जाता है कि आवेदकों ने इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया है, तो वह अनुमोदनार्थ आवेदन को ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, नामंजूर कर देगी ।

42. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1-क), (1-ख), (1-ग), उपधारा (3-क) को 2011 के संशोधन अधिनियम सं. 16 द्वारा अंत:स्थापित किया गया है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 का सूक्ष्मता से परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि उपधारा (1) के अधीन अंग दाता की मृत्यु के पूर्व उसके शरीर से अंग निकालकर प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रतिरोपित किए जाने हेतु विहित किया गया है । उपधारा (1) के अधीन ही, "उपधारा (3) में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय", अभिव्यक्ति के रूप में अपवाद उपबंधित है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के उपबंधों को निर्दिष्ट करते हुए इस धारा की उपधारा (2) पर विचार किया जाए जिसके अधीन यह कहा गया है कि जब कोई अंगदाता या अन्य कोई व्यक्ति जिसे अंगदाता की मृत्यु के पश्चात् अंग के संदान के लिए प्राधिकृत किया गया है, प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने किसी अंग के निकाले जाने को प्राधिकृत करता है, तब ऐसे प्राप्तिकर्ता के शरीर में अंग का प्रतिरोपण किया जा सकता है जिसे मानव-अंग या ऊतक या दोनों की आवश्यकता है । इस अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) अंगदाता को इस बाबत प्राधिकृत करती है कि वह अपना कोई अंग या ऊतक या दोनों को अपनी मृत्यु के पूर्व धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन ऐसे प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रत्यारोपित कर सके जो उसका कोई निकट नातेदार न हो जैसाकि अंगदाता द्वारा विनिर्दिष्ट किया गया है कि वह ऐसा संदान प्राप्तिकर्ता से स्नेह या लगाव या अन्य किसी कारण से कर रहा है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन मानव-अंग का निकाला जाना प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) के खंड (क) या खंड (ख) के अधीन गठित प्राधिकार समिति के पूर्वानुमोदन के अनुसरण में होगा ।

43. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 और धारा 9 के अधीन अनेक उपबंधों पर तुलनात्मक विचार करने पर निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :–

"(i) प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) सामान्य उपबंध है जिसके अधीन अंगदाता को उसकी मृत्यु के पूर्व अपना अंग या ऊतक दोनों को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ संदान करने के लिए प्राधिकृत किया गया है । अंगदान करने संबंधी अंगदाता की यह कानूनी स्वतंत्रता प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन उल्लिखित शर्तों के अध्यधीन होगी । इस धारा के अधीन अंगदाता की मृत्यु के पूर्व और पश्चात् उसका अंग निकाले जाने को प्राधिकृत किया गया है ।

(ii) प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 अंगदाता की सहमति की उपलब्धता अथवा अनुपलब्धता या उसके निकट नातेदार को इस बाबत अवगत कराने के संबंध में है कि उसको अंगदाता की मृत्यु के पश्चात् रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मानव-अंग निकाले जाने के लिए प्राधिकृत करने का विकल्प उपलब्ध है । इस उपबंध के अधीन मानव-अंग, ऊतक या दोनों को उस व्यक्ति के शरीर से निकालने हेतु इच्छा या सहमति को स्पष्ट किया गया है जिसकी मस्तिष्क-मृत्यु हो गई है ।

(iii) प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) और उपधारा (3) के अधीन मानव-अंग, ऊतक या दोनों का संदान किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं है । इसीलिए "भंडार" अभिव्यक्ति का प्रयोग प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1-क) में किया गया है ।

(iv) प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) और उपधारा (3) और धारा 9 की उपधारा (2) का एक साथ परिशीलन करना आवश्यक है जिनके अंतर्गत दाता की मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर से मानव-अंग, ऊतक या दोनों के हटाए जाने को प्राधिकृत किया गया है जिनका प्रयोग ऐसे व्यक्ति के शरीर में प्रतिरोपित किए जाने के लिए किया जा सकता है जिसे ऐसे मानव-अंग, ऊतक

या दोनों की आवश्यकता है । जिस अंगदाता को प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) और उपधारा (3) के अधीन अपने अंगों के निकाले जाने के लिए प्राधिकृत, वह प्राप्तिकर्ता का चुनाव नहीं कर सकता ।"

44. मानव-अंग, ऊतक या दोनों को प्रतिरोपण हेतु निकाले जाने के लिए केवल तब अनुज्ञात किया जा सकता है जब अंगदाता इस अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन किंतु उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन प्राप्तिकर्ता का निकट नातेदार हो ।

45. इस अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के साथ पठित धारा 3 की उपधारा (1) से यह उपदर्शित होता है कि दाता अपने जीवनकाल के दौरान अंग निकाले जाने और उस प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रतिरोपित किए जाने का प्राधिकार दे सकता है जो उसका निकट नातेदार नहीं है । दाता इस अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन इस प्रकार अंग निकाले जाने को दो कारणों से प्राधिकृत कर सकता है – (i) प्राप्तिकर्ता से स्नेह, और (ii) लगाव ; या अन्य किसी कारण से । जैसाकि ऊपर विचार किया गया है, अंगों का इस प्रकार निकाला जाना और प्रतिरोपित किया जाना प्राधिकार समिति की पूर्वानुमति के बिना अनुज्ञात नहीं है ।

46. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और संघ राज्यक्षेत्र के लिए गठित की जाने वाली प्राधिकार समिति के बारे में है ताकि प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन यथापेक्षित अनुमोदन दिया जा सके ।

47. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (5) के अधीन इस समाधान के लिए प्राधिकार समिति द्वारा जांच कराए जाने का अनुबंध किया गया है कि आवेदकों ने प्रतिरोपण अधिनियम और उसके अंतर्गत विरचित नियमों के अधीन सभी अपेक्षाएं का अनुपालन कर दिया है । जब एक बार यह पाया जाए कि आवेदकों ने प्रतिरोपण अधिनियम और उसके अंतर्गत विरचित नियमों की अपेक्षाओं का अनुपालन मानव-अंग के निकाले जाने और उसका प्रतिरोपण किए जाने के लिए कर दिया

है, तब प्राधिकार समिति अपेक्षित अनुमोदन मंजूर करने के लिए बाध्य है । तथापि, यदि यह पाया जाता है कि आवेदकों ने अपेक्षाएं पूरी नहीं की हैं, तब प्राधिकार समिति के लिए यह आवश्यक है कि वह अनुमोदन के लिए फाइल किए गए आवेदन को कारण अभिलिखित करते हुए खारिज कर दे ।

48. प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 24 केन्द्र सरकार को यह शक्ति प्रदत्त करती है कि वह इस अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकार समिति के गठन, रूप और रीति जिसमें प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (5) के अधीन दाता और प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से आवेदन फाइल किया गया है, सहित अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करे ।

49. मानव-अंगों और ऊतकों का प्रतिरोपण नियम 2014 विरचित किए गए हैं । प्रतिरोपण नियम का नियम 13 राज्य या जिला स्तर पर प्राधिकार समिति का गठन किए जाने के संबंध में है । इस प्रक्रम पर यह उल्लेखनीय और दोहराने योग्य है कि प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) को उपधारा (2)(ग) के अधीन इस रूप में परिभाषित किया गया है कि प्राधिकार समिति प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) के खंड (क) या खंड (ख) के अधीन गठित की जाएगी । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) के खंड (क) के अधीन प्राधिकार समिति केन्द्र सरकार द्वारा गठित की गई समिति है जबकि उक्त उपधारा के खंड (ख) के अधीन राज्य सरकार और संघ राज्यक्षेत्र, जैसा भी मामला हो, द्वारा एक या अधिक प्राधिकार समिति के गठन किए जाने के संबंध में जारी अधिसूचना को निर्दिष्ट किया गया है ।

50. मैं प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3-क) के उक्त उपबंधों को सीमित प्रयोजन के लिए निर्दिष्ट करना चाहूंगा कि क्या किसी अंग को इस आधार पर संपत्ति माना जा सकता है कि विधि के अधीन एक व्यक्ति के अंग को निकालकर दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रतिरोपित किए जाने के लिए प्राधिकृत किया गया है । वर्तमान में प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) के खंड (ख) के अधीन

राज्य प्राधिकार समिति बिहार राज्य में वर्तमान रिट याचिका में याचियों द्वारा की गई शिकायत पर विचार कर रही है ।

51. प्रतिरोपण नियम के नियम 10 के अधीन यह आज्ञापक है कि प्रतिरोपण नियम में निर्दिष्ट फार्म सं. 11 अंग संदान करने वाले दाता और प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से भरा जाएगा । नियम 11 के अधीन यह अनुबंध किया गया है कि एक राज्य प्राधिकार समिति और अतिरिक्त प्राधिकार समिति का गठन प्रत्येक जिले या संस्था या अस्पताल में किया जा सकता है जो प्रतिरोपण नियमों के अध्यधीन होगा । नियम 11 के उप-नियम (3) के अधीन यह अपेक्षित है कि संस्था के प्रतिरोपण दल का कोई भी सदस्य उससे संबंधित प्राधिकार समिति का सदस्य नहीं होना चाहिए । नियम 11 के उप-नियम (4) के अधीन यह विहित किया गया है कि यदि एक वर्ष में प्रतिरोपण केन्द्रों में प्रतिरोपण ऑपरेशन की संख्या 25 या उससे अधिक है, तब प्राधिकार समिति का गठन अस्पताल द्वारा किया जाना चाहिए और यदि ऐसे प्रतिरोपण ऑपरेशनों की संख्या 25 से कम है तब राज्य या जिला प्राधिकार समिति से अनुमोदन लेना होगा । नियम 12 के अधीन अस्पताल आधारित प्राधिकार समिति को निर्दिष्ट किया गया है । प्रतिरोपण नियम के नियम 13 के अधीन राज्य/जिला प्राधिकार समिति के बारे में अधिकथित किया गया है ।

52. वर्तमान मामले में राज्य प्राधिकार समिति द्वारा संयुक्त आवेदन फाइल किया गया है । जब एक बार प्राधिकार समिति के समक्ष संयुक्त आवेदन फाइल किया जाता है और दाता और प्राप्तिकर्ता एक-दूसरे के निकट नातेदार नहीं होते हैं और वे उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के निवासी नहीं हैं जहां प्रतिरोपण ऑपरेशन किया जाना है, तब व्यक्तियों के निवास-स्थान का सत्यापन तहसीलदार या अन्य किसी प्राधिकृत अधिकारी द्वारा किया जाएगा जिसकी एक प्रति अधिवास प्रमाणपत्र के रूप में प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 13 के अधीन राज्य या संघ राज्यक्षेत्र द्वारा नियुक्त किए गए समुचित प्राधिकारी को भेजी जाएगी ताकि समुचित प्राधिकारी को फार्म सं. 20 के अनुसरण में सूचित

किया जा सके । यदि मानव-अंगों की तस्करी का कोई संदेह होता है तब समुचित प्राधिकारी या अन्य कोई अधिकारी प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में अन्वेषण और कार्रवाई किए जाने हेतु पुलिस को सूचित करेगा । इसका स्पष्ट उद्देश्य मानव-अंगों के वाणिज्यिक संव्यवहार को रोकना है । नियम 19 के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि जहां प्रस्तावित प्रतिरोपण निकट नातेदारों के अन्यथा किया जाना है और जहां अंग संदान करने वाला दाता या प्राप्तिकर्ता विदेशी नागरिक है (निकट नातेदार या अन्यथा के होते हुए भी) अस्पताल की प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन प्रदान किया जाएगा और यदि अस्पताल प्राधिकार समिति का गठन नहीं किया गया है तब ऐसी स्थिति में जिला या राज्य प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन प्रदान किया जाएगा ।

53. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक प्राधिकार समिति अस्पताल आधारित होती है जिसका गठन तब किया जाता है जब एक वर्ष में प्रतिरोपण के मामलों की संख्या 25 से अधिक होती है और यह समिति जीवित दाता के शरीर से मानव-अंग निकालकर ऐसे प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रतिरोपित किए जाने का अनुमोदन करती है जो दाता का निकट नातेदार नहीं है ।

54. यह उल्लेखनीय है कि नियम 10 के अधीन यह अपेक्षा की गई है कि प्रतिरोपण रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी के अनुमोदन और प्रतिरोपण संस्था के प्रशासनिक विभाग द्वारा प्राधिकृत किए जाने के आधार पर ही किया जाएगा । प्रतिरोपण नियम से संलग्न फार्म सं. 11 में विहित निर्देशों का परिशीलन करने पर यह पता चलता है कि यह फार्म सं. 1, या फार्म सं. 2 या फार्म सं. 3, जैसी भी स्थिति हो, के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में फार्म सं. 3 जीवित निकट नातेदारों से अन्यथा को संदान किए जाने के संबंध में लागू होता है । इसके अधीन यह भी अपेक्षित है कि उस चिकित्सक से ली गई सलाह भी प्रस्तुत करनी होगी जिसने प्रतिरोपण की सिफारिश की है । इसके अतिरिक्त यदि प्रतिरोपण दो गैर-नातेदार व्यक्तियों के बीच किया

जाना है तब प्रतिरोपण आवेदन के साथ दाता तथा प्राप्तिकर्ता के व्यवसाय और तीन वर्ष की आय का साक्ष्य भी संलग्न करना होगा । निर्देशों के अधीन यह भी सत्यापित किया जाना चाहिए कि आय के साक्ष्य का अर्थ यह नहीं है कि आयकर-विवरणी प्रस्तुत की जाए क्योंकि यह भी हो सकता है कि प्रतिरोपण आवेदन प्रस्तुत करने वाले आवेदक आयकर-विवरणी फाइल ही न करते हों । इस प्रकार निर्देशों के अधीन यह अनुबंध किया गया है कि प्रतिरोपण आवेदन प्राधिकार समिति द्वारा केवल तब स्वीकार किया जाएगा जब सभी औपचारिकताएं पूरी कर दी गई हों और किसी भी दस्तावेज या सूचना का लोप किए जाने पर आवेदन अधूरा माना जाएगा । आवेदन पर भावी दाता और भावी प्राप्तिकर्ता के हस्ताक्षर भी होने चाहिएं ।

55. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि यह आवश्यक है कि प्रतिरोपण के अनुमोदन के दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी और प्रतिरोपण संस्था के प्रशासनिक विभाग द्वारा तैयार की जानी चाहिएं । प्रतिरोपण नियम के नियम 10 के उप-नियम (3) के अधीन यह अनुज्ञात है कि राज्य सरकार फार्म सं. 1, फार्म सं. 2 या फार्म सं. 3 के साथ फार्म सं. 11 को संलग्न करेगी परंतु ऐसा तब किया जाएगा जब सिफारिशी फार्म की अन्तर्वस्तु की परिधि में सभी शर्तें आ जाएं और इसका अनुमोदन संबंधित राज्य सरकार द्वारा किया जाए । न्यायालय को इस बाबत जानकारी नहीं दी गई है कि क्या ऐसे फार्म संलग्न किए गए हैं या नहीं । प्रतिरोपण नियम के नियम 10 के उप-नियम (2) के अधीन प्राधिकार समिति से यह अपेक्षा की गई है कि वह नियम 18 के अनुसरण में ऐसे आवेदनों को विनिश्चित करे । तथापि, प्रतिरोपण नियम का नियम (18) ऐसे अंग संदान तक ही सीमित है जो निकट नातेदारों के बीच किया जाता है । न्यायालय की राय में प्राधिकार समिति द्वारा, ऐसे किसी आवेदन पर जो निकट नातेदार से अन्यथा द्वारा फाइल किया गया है, को विनिश्चित करने हेतु प्रक्रिया, प्राधिकार नियम के नियम (7) के उप-नियम (3) के अधीन विहित की गई है जो निम्न प्रकार है :–

(3) जब प्रस्तावित दाता और प्राप्तिकर्ता निकट नातेदार नहीं

हैं, तो प्राधिकार समिति –

"(i) यह मूल्यांकन करेगी कि प्राप्तिकर्ता और दाता के बीच कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं है और यह कि दाता को कोई संदाय नहीं किया गया है या दाता या किसी अन्य व्यक्ति को संदाय करने का वचन नहीं दिया गया है ;

(ii) उनके बीच संबंध और वे परिस्थितियां जिनके कारण प्रस्ताव किया गया है, का स्पष्टीकरण तैयार करेगी ;

(iii) उन कारणों की परीक्षा करेगी कि दाता की दान करने की इच्छा क्यों है ;

(iv) संबंध के दस्तावेजी साक्ष्य जैसे यह सबूत कि वे साथ-साथ रहते हैं, आदि की परीक्षा करेगी ;

(v) दाता और प्राप्तिकर्ता को एक साथ दर्शित करते हुए पुराने फोटों चित्रों की परीक्षा करेगी ;

(vi) यह मूल्यांकन करेगी कि कोई बिचौलिया या दलाल अन्तर्वलित नहीं है ;

(vii) दाता और प्राप्तिकर्ता की वित्तीय प्रास्थिति की यह मांग करते हुए मूल्यांकन करेगी कि वे गत तीन वित्तीय वर्षों के लिए अपने व्यवसाय और आय का समुचित साक्ष्य दें और उन दोनों की प्रास्थिति के बीच किसी घोर असमानता का मूल्यांकन वाणिज्यिक व्यवहार के निवारण के उद्देश्यों की पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए ;

(viii) यह सुनिश्चित करेगी कि दाता कोई दुर्व्यवेसनी नहीं है ;

(ix) यह सुनिश्चित करेगी कि नातेदार या यदि निकट नातेदार उपलब्ध नहीं है तो प्रस्तावित असंबंधित दाता के रक्त या विवाह द्वारा दाता से संबंधित किसी वयस्क व्यक्ति का उसके अंग या ऊतक का दान करने के आशय के बारे में

जागरूकता, दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच संपर्क और दान के कारणों की अधिप्रमाणिकता के बारे में साक्षात्कार किया गया है और ऐसे संबंधी के विरोधी विचारों या असहमति या आक्षेपों को भी अभिलिखित किया जाएगा और उनको ध्यान में रखा जाएगा ।"

56. प्रतिरोपण नियम के नियम 23 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि प्राधिकरण समिति (जो केवल मानव-अंग या ऊतक का संदान करने वाले जीवित दाताओं को लागू होती है) यह अभिलिखित करेगी कि फार्म सं. 18 के अनुसार प्रस्तावित जीवित दाता का आवेदन खारिज या स्वीकार किस आधार पर किया गया है और इस प्रकार किया गया अनुमोदन नियमों के अधीन उल्लिखित शर्तों के अध्यधीन होगा । चूंकि प्रतिरोपण नियम का नियम 23 वर्तमान न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ सुसंगत है इसलिए यह निम्न प्रकार उद्धृत किया जा रहा है :–

"23. **प्राधिकार समिति का विनिश्चय** – (1) प्राधिकार समिति को (जो केवल जीवित अंग या ऊतक दाता को लागू है) विहित प्ररूप 8 में प्रस्तावित जीवित दाता के आवेदन को नामंजूर या अनुमोदित करने के कारणों का लिखित में कथन करना चाहिए और ऐसे सभी अनुमोदन निम्नलिखित शर्तों के अध्यधीन होने चाहिएं, अर्थात् –

(i) अनुमोदित प्रस्तावित दाता के ऐसे सभी चिकित्सा परीक्षण किए जाएंगे जो प्रश्नगत अंग का दान करने के लिए उसकी जैव क्षमता और अनुरूपता को अवधारित करने के लिए सुसंगत अवस्थाओं में अपेक्षित हों;

(ii) यह जानने के लिए दाता का शारीरिक और मानसिक मूल्यांकन कर लिया गया है कि क्या वह स्वास्थ्य की समुचित अवस्था में है और प्ररूप 4 में रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा यह प्रमाणित कर दिया गया है कि वह मानसिक बाधाग्रस्त नहीं है और अंग या ऊतक दान करने योग्य है :

परंतु दाता के मानसिक बाधाग्रस्त प्रास्थिति का संदेह होने की दशा में रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी या प्राधिकार समिति दाता की परीक्षा मनोचिकित्सक द्वारा करा सकेंगे ;

(iii) प्रतिरोपण की प्रक्रिया में अन्तर्वलित सभी सुसंगत व्यक्तियों द्वारा सभी विहित प्ररूप भर दिए गए हैं ;

(iv) सभी साक्षात्कारों की विडियो रिकार्डिंग की जानी है ।

(2) प्राधिकार समिति ऐसे सभी मामलों में जहां रोगी का प्रतिरोपण तत्काल आधार पर किया जाना अपेक्षित है, विनिश्चय प्रक्रिया को तेज करेगी और अपने विवेक का प्रयोग न्यायिक और व्यावहारिक रूप से करेगी ।

(3) प्रत्येक प्राधिकृत प्रतिरोपण केन्द्र के पास अपनी स्वयं की वेबसाइट होनी चाहिए और प्राधिकार समिति से प्रतिरोपण की अनुज्ञा या नामंजूरी प्रदान करने के लिए बैठक आयोजित करने के 24 घंटे के भीतर अंतिम विनिश्चय किया जाना अपेक्षित है ।

(4) प्राधिकरण समिति के विनिश्चय को प्राप्तिकर्ता और दाता की पहचान को गुप्त रखते हुए तुरंत अस्पताल या संस्था के सूचना पट्ट पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए और इसे अस्पताल या संस्था की वेबसाइट पर भी विनिश्चय करने के 24 घंटे के भीतर उपदर्शित किया जाना चाहिए ।

57. यह उल्लेखनीय है कि प्रतिरोपण नियम के नियम 16 के अधीन यह अपेक्षित है कि प्राधिकार समिति द्वारा दिए जाने वाले अनुमोदन पत्र का नमूना राज्य की सभी संस्थाओं में एक जैसा होना चाहिए और फार्म सं. 18 के अनुसार संबद्ध राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित भी किया जाना चाहिए । यही कारण है कि नियम 23 के अधीन प्राधिकार समिति द्वारा, विहित फार्म सं. 18 के अनुसार विनिश्चित किया जाना आवश्यक है । फार्म सं. 18 में टंकण संबंधी त्रुटि मालूम देती है जिसमें फार्म सं. 11 के स्थान पर फार्म सं. 10 टंकित किया गया है । इस प्रकार प्रतिरोपण नियम के अधीन दो व्यक्तियों के

बीच, जो एक-दूसरे के निकट नातेदार नहीं हैं, मानव-अंग के प्रतिरोपण के अनुमोदन को अंतिम रूप देने के लिए तीन चरण हैं जो इस प्रकार हैं :–

(i) प्राधिकार समिति के समक्ष रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायी द्वारा फार्म सं. 11 के अनुसार संयुक्त आवेदन प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

(ii) प्राधिकार समिति द्वारा आवेदन, जो नियम 7(3) के अनुसार विहित अनुमोदन प्रदान किए जाने हेतु फाइल किया गया है, का मूल्यांकन किया जाना चाहिए ।

(iii) प्राधिकार समिति का सकारण विनिश्चय, जैसाकि नियम सं. 13 के अधीन अनुध्यात है, फार्म सं. 18 में विहित रीति में किया जाना चाहिए ।

58. इस प्रकार न्यायालय की राय में यदि चिकित्सक के परामर्श के अनुसार अंग का प्रतिरोपण किया जाना आवश्यक है और वह दाता जो प्राप्तिकर्ता का निकट नातेदार नहीं है, अपना अंगदान करने की इच्छा व्यक्त करता है और इसके पश्चात् दाता और प्राप्तिकर्ता प्रतिरोपण नियम के नियम 10 के अधीन संयुक्त आवेदन प्रस्तुत करते हैं, तब रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायी और प्रतिरोपण संबंधी संस्था का प्रशासनिक विभाग, प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन दिए जाने हेतु फाइल किए गए आवेदन को अग्रेषित करने से इनकार नहीं कर सकता । प्राधिकार समिति द्वारा यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि ऐसा संदान प्राप्तिकर्ता से स्नेह या लगाव या अन्य किसी कारण से किया जा रहा है, जिन्हें प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9(3) के अधीन अनुध्यात किया गया है । प्राधिकार समिति को ही यह मूल्यांकन करना होगा कि प्राप्तिकर्ता और दाता के बीच कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं है और यह कि दाता को किसी भी धनराशि का संदाय नहीं किया गया है और न ही दाता को या अन्य किसी व्यक्ति को इस प्रकार संदाय किया गया है । नियम 7 के उप-नियम (3) के अधीन उन बिन्दुओं को अधिकथित किया गया है जिनके अनुसार प्राधिकार समिति को मूल्यांकन करते हुए

इस निष्कर्ष तक पहुंचना होगा कि मानव-अंग का प्रस्तावित संदान में कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है ।

59. यह मूल्यांकन किए जाने के अतिरिक्त कि प्राप्तिकर्ता और दाता के बीच किसी भी प्रकार का कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है, वाणिज्यिक समिति प्रतिरोपण नियम के अधीन यह स्पष्ट करने के लिए बाध्य है कि दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच संबंध किस प्रकार स्थापित हुआ और उन परिस्थितियों को भी स्पष्ट करना होगा जिनके आधार पर अंग का संदान किया जाना है । प्राधिकार समिति से यह अपेक्षित है कि वह उन कारणों पर विचार करे कि दाता संदान करने के लिए क्यों इच्छुक है और प्राधिकार समिति को दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा यह भी सुनिश्चित करना होगा कि दाता और प्राप्तिकर्ता साथ-साथ रहते हैं । प्रतिरोपण के लिए फाइल किए गए आवेदन को स्वीकार करने के लिए प्राधिकार समिति को कतिपय पहलुओं पर विचार करना होगा अर्थात् ऐसे पुराने फोटोग्राफ देखने होंगे जिनमें दाता और प्राप्तिकर्ता को एक साथ दर्शाया गया हो, यह भी सुनिश्चित करना होगा कि दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच कोई भी मध्यस्थ नहीं है और यह कि दाता स्वापक पदार्थ का सेवन करने का आदि नहीं है । प्राधिकार समिति से यह अपेक्षित है कि वह दाता और प्राप्तिकर्ता की वित्तीय हैसियत का मूल्यांकन करने के लिए उनसे उनके व्यवसाय और पिछले तीन वर्षों की आय से संबंधित समुचित साक्ष्य मांगे और यह भी सुनिश्चित करे कि दाता और प्राप्तिकर्ता की हैसियत के बीच भारी अंतर तो नहीं है ताकि इस आधार पर किसी भी वाणिज्यिक संव्यवहार को रोका जा सके । नियम के अधीन प्राधिकार समिति यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि दाता के निकट नातेदार को और यदि निकट नातेदार उपलब्ध नहीं है तब विवाहोपरांत बने नातेदार को इस बाबत अवगत करा दिया गया है कि वह अंग या ऊतक का संदान करने का आशय रखता है, दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच बने संबंध की प्रमाणिकता और संदान किए जाने के कारण तथा संदान करने या न करने से संबंधित इच्छा जैसे पहलुओं को भी सुनिश्चित करना होगा । प्राधिकार समिति द्वारा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जीवित दाता द्वारा जिस व्यक्ति को मानव-अंग

का संदान किया जाना है वह उसका निकट नातेदार नहीं है और इसके लिए कोई भी मूल्यवान प्रतिफल नहीं दिया जा रहा है और यह भी सुनिश्चित करना होगा कि प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9(3) की सभी अपेक्षाओं का समाधान कर दिया गया है अर्थात् दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच स्नेह और लगाव है या अन्य किसी विशेष कारण से अंग का संदान किया जा रहा है और यह कि इस संदान में स्पष्ट रूप से कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है जो कि इस अधिनियम के प्रमुख तत्वों में से एक है ।

60. प्रतिरोपण नियम के नियम 33 की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने पर यह पता चलता है कि फार्म सं. 18 के अनुसार प्राधिकार समिति द्वारा अनुमोदन प्रदान किया जाता है, तब ऐसा प्राधिकार नियमों के अधीन दी गई शर्तों के अध्यधीन होगा और साथ ही अनुमोदित प्रस्तावित दाता को सभी चिकित्सा परीक्षण सुसंगत प्रक्रमों पर कराने होंगे ताकि प्रश्नगत अंग संदान करने के लिए उसकी जैविक क्षमता और अनुकूलता सुनिश्चित की जा सके । दाता की शारीरिक और मानसिक जांच की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि उसका स्वास्थ्य ठीक है या नहीं और यह कि वह मानसिक रोग से ग्रसित तो नहीं है । प्राधिकार समिति को दाता और प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन को विनिश्चित करना होगा जिसके लिए उसे प्रतिरोपण अधिनियम और नियम के उपबंधों का कड़े रूप में पालन करना होगा । अस्पताल या रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी की इस संबंध में प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है कि वह मानव-अंग का संदान करने के लिए जैविक क्षमता और अनुकूलता प्रमाणित करे । प्राधिकार समिति प्रतिरोपण नियम के अधीन फार्म सं. 11 के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए आवेदन के संबंध में प्रक्रिया चलाने के लिए अपना विनिश्चय नहीं रोक सकती । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में, अस्पताल ने प्राधिकार समिति द्वारा दिए जाने वाले अनुमोदन के अभाव में दाता और प्राप्तिकर्ता के बीच अनुकूलता स्थापित करने हेतु प्रक्रिया चलाने में अपनी अक्षमता व्यक्त की है । प्राधिकार समिति ने अस्पताल को यह उत्तर दिया है कि अंतिम रूप से अनुकूलता

की प्रक्रिया चलाने के लिए कोई भी अनुमोदन अपेक्षित नहीं है । अभी तक यह पता चलता है कि प्राधिकार समिति ने दाता और प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन पर कोई भी विनिश्चय नहीं किया है जो कि लंबे समय से लंबित है ।

61. मैं इस प्रक्रम पर, इस अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन को दृष्टिगत करते हुए किसी जीवित व्यक्ति के अंग का प्रतिरोपण किसी अन्य व्यक्ति के शरीर में किए जाने संबंधी उसके अधिकार पर चर्चा करना उचित समझता हूं । इस पहलू पर विचार करने के लिए मुझे यह कहना समझना होगा कि क्या किसी व्यक्ति को अपने शरीर पर वैसा ही अधिकार है जैसा उसकी संपत्ति पर होता है । प्रतिरोपण अधिनियम की स्कीम पर गहराई से विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन नहीं है कि इस अधिनियम के अधीन शव और जीवित शरीर से संबंधित अलग-अलग उपबंध किए गए हैं । उदाहरणार्थ, इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3), जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, के अधीन उस स्थिति को परिकल्पित किया गया है जब ऐसे व्यक्ति की मृत्यु होती है जिसने अपने शरीर के अंग को निकाले जाने के लिए किसी व्यक्ति को प्राधिकृत नहीं किया है और न ही अपनी मृत्यु के पश्चात् अंग निकाले जाने हेतु कोई आपत्ति स्पष्ट की है । शव पर विधिपूर्ण कब्जा रखने वाला कोई व्यक्ति या उस मृतक का कोई निकट नातेदार, जैसा भी मामला हो, को यह अधिकार होगा कि वह रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मृतक के शरीर से अंग निकाले जाने का निर्णय ले सके । वह व्यक्ति रोगोपचार के प्रयोजनार्थ शव से अंग निकाले जाने का सीमित अधिकार अर्जित करेगा । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन जीवित व्यक्ति को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसकी मृत्यु के पश्चात् अपना अंग निकाले जाने के लिए अनुज्ञात किया गया है । अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन जीवित व्यक्ति को नियंत्रित अनुज्ञा प्रदान की गई है कि वह अपनी मृत्यु के पूर्व अपने अंग का संदान कर सके । इसमें कोई बाधा नहीं है कि कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु के पूर्व अपने अंग का संदान करे यदि संदान ऐसे प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रतिरोपण के लिए किया जा रहा है जो उस स्थिति के सिवाय जिसने

दाता या प्राप्तिकर्ता विदेशी नागरिक है, उसका निकट नातेदार है । इस अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (1) के अधीन पति या पत्नी, पुत्र, पुत्री, पिता, माता, भाई, बहिन, दादा, दादी, पौत्र या पौत्री आते हैं । एक जीवित व्यक्ति अपने अंग निकाले जाने के लिए अपने जीवनकाल के दौरान ऐसे व्यक्ति को भी प्राधिकृत कर सकता है जो उसका निकट नातेदार नहीं है । प्राप्तिकर्ता के शरीर में चिकित्सीय जांच के परिणामस्वरूप अपने अंग का प्रतिरोपण किए जाने के लिए संदान करने वाले व्यक्ति का अधिकार प्रतिरोपण अधिनियम के मूल उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियंत्रित किया गया है और मानव-अंगों के वाणिज्यिक संव्यवहार को प्रतिषिद्ध भी किया गया है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) में उल्लिखित अपने अंग का संदान अपने जीवनकाल के दौरान स्नेह और लगाव के आधार पर करने के संबंध में कानूनी प्राधिकारियों द्वारा निर्णय लिए जाने के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत है ताकि ऐसा संदान बिना किसी वाणिज्यिक संव्यवहार के लिए किया जा रहा है या नहीं ।

62. एलेकजेण्डर जार्ज द्वारा लिखित पुस्तक "मानव शरीर और उसके अंग" (रेस पब्लिका 10 : 15-42, 2004) जिसका प्रकाशन क्लूवेल एकेडेमिक पब्लिशर्स द्वारा नेदरलैंड में किया गया है, में यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या सामान्य संपत्ति को दृष्टिगत करते हुए किसी व्यक्ति का शरीर जिस पर उसका नियंत्रण है, उसकी संपत्ति है ?

63. इसके पश्चात् इस लेखक ने विधि के रचेताओं द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर "संपत्ति" को परिभाषित करने का प्रयास किया है जिसका प्रयोग विधिक संरचना के रूप में, जो विधि के रचेताओं को उपलब्ध है, विनिश्चय हेतु किया जाना चाहिए । ब्रिटिश एकेडेमिक वकील सर ईयान मेक काल केनेडी जो स्वास्थ्य संबंधी विधि और नैतिकता के मामलों के विशेषज्ञ हैं, ने अपनी पुस्तक "मेडिकल ला एंड एथिक्स" (आक्सफोर्ड : कलेरेन्डन प्रेस, 1988) में "ट्रीट मी राइट" नामक निबंध लिखा है जो निम्न प्रकार है :–

"मानव-अंगों की तस्करी को माफ किया जाए या इसे मूल रूप

से अपमानजनक माना जाए या पितृसत्तात्मक रूप से कार्य करने वाले समाज को किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं देना चाहिए कि वह अपने निर्णय स्वयं ले सकें या वह अपनी इच्छानुसार कार्य कर सके या वाणिज्यिक संव्यवहार को छोड़कर कोई अपरंपरागत कार्य कर सके जैसे दर्शनात्मक मुद्दों पर गहराई से विचार किया है।"

64. प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों और उसके अंतर्गत विरचित नियमों का गहराई से परिशीलन करने पर मेरा यह मत है कि अधिनियमिति और उसके अधीन विरचित नियम प्राथमिक रूप से दो विधिक सूत्र अर्थात् (i) सेलर्स पोपुली सुप्रेमा लेक्स (लोगों का कल्याण सर्वोपरि कानून है) (ii) पेरेन्स पेट्रीए (राष्ट्र लोगों की देखभाल के लिए बाध्य है) की पुष्टि करते हैं । पेरेन्स पेट्रीए का सिद्धांत ब्रूम्स लीगल मेक्सिम्स (यूनिवर्सल ला पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित 11वां संस्करण देखें) नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से समझाया गया है । प्रत्येक स्वराज्य में यह परिपूर्ण शक्ति उन सभी कार्यों को करने के लिए अन्तर्निहित है जो स्वास्थ्य, शांति, नैतिकता, शिक्षा और अनुशासन को बनाए रखने में सहायक हैं और राज्य में संपन्नता और समृद्धि बढ़ाते हैं ।

65. यह उल्लेखनीय है कि रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मानव-अंग निकालने और उसका प्रतिरोपण अन्य व्यक्ति के शरीर में किए जाने जैसे मानव कल्याण के लिए उपबंधों की रचना की गई है । तथापि, प्रतिरोपण अधिनियम का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि मानव-अंगों का वाणिज्यिक संव्यवहार का निवारण किया जा सके । यदि कोई व्यक्ति स्वस्थचित्त है, आयु की दृष्टि से भी योग्य है जिस पर कोई दबाव भी नहीं है, अपने जीवनकाल के दौरान विधि के किसी भी उपबंध का भंग किए बिना किसी व्यक्ति के कल्याण के लिए अपने अंग का संदान करने का आशय रखता है, तब उसको उसके इस अधिकार से आसानी से वंचित नहीं किया जा सकता । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस संबंध में कड़ी जांच और अन्वेषण किया जाना चाहिए कि अंग निकाले जाने के लिए किसी प्रकार का कोई भी वाणिज्यिक

संव्यवहार नहीं किया गया है और अंग का संदान करने वाले व्यक्ति की सहमति की जांच कर ली गई है ।

66. मानव-अंग जिसका प्रयोग रोगोपचार के प्रयोजनार्थ किया जा सकता है को परिभाषित करने के लिए "संपत्ति" उपयुक्त शब्द नहीं है जिसका यह कारण है कि मानव-अंग का मूल्य अथाह है । प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "मानव-अंग" ऊतक से बनी संरचना है जो यदि पूर्णतया शरीर से निकाली जाए तो उसे शरीर दोबारा नहीं बना सकता । इस प्रकार ऐसा मानव-अंग जिसे कृत्रिम रूप से नहीं बनाया जा सकता वह इतना मूल्यवान है कि उसे "संपत्ति" नहीं कहा जा सकता चाहे वह उस व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान निकाला जाए या उस व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके किसी नातेदार के पास ऐसी स्थिति में हो जब मृतक ने अपना अंग निकाले जाने के लिए किसी को प्राधिकृत नहीं किया हो । प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के प्रयोजनार्थ मानव-अंग का प्रयोग सीमित रूप से ही किया जा सकता है जिसे अधिनियम के अधीन अनुध्यात भी किया गया है ।

67. वर्तमान मामले पर पुन: विचार करने पर पता चलता है कि, जैसाकि पूर्वगामी पैराओं में उपदर्शित किया गया है, प्रत्यर्थी विशेषकर प्राधिकार समिति प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रस्तावित दाता के मानव-अंग का प्रतिरोपण किए जाने संबंधी अनुज्ञा विनिश्चित करने की अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने में असफल रही है । प्राधिकार समिति का यह कानूनी कर्तव्य था कि उस सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष अभिलिखित करे जो उसके समक्ष उपलब्ध थी कि क्या संस्था प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता के शरीर में प्रस्तावित दाता के मानव-अंग का प्रतिरोपण किए जाने हेतु प्रक्रिया आरंभ करने के लिए प्राधिकृत है या नहीं । प्रतिरोपण नियम के नियम 23 के अधीन कानूनी समिति का यह कर्तव्य है कि प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन को खारिज या मंजूर करे । प्रतिरोपण नियम के नियम 7 के उप-नियम (3) के अधीन स्पष्ट शब्दों में उस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जो नियम 23 के अधीन अंतिम विनिश्चय लेने के लिए अपनाई जाती है । मात्र इस आधार पर कि प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता के बीच अनुकूलता बनाने के

लिए प्राधिकार समिति की ओर से किसी भी अनुमोदन की आवश्यकता नहीं थी और प्राइवेट अस्पताल द्वारा कतिपय संसूचना दी गई थी, इसलिए प्राधिकार समिति प्रतिरोपण नियम के नियम 23 के अधीन आवश्यक अनुमोदन मंजूर करने या न करने की प्रक्रिया आरंभ किए जाने का विनिश्चय रोक ही नहीं सकती थी ।

68. ऊपर उल्लिखित चर्चा को अंतिम रूप देने के लिए, मेरी राय में, प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अधीन अपने अंगों के निकाले जाने के लिए किसी को प्राधिकृत करने संबंधी इच्छा सर्वोपरि है । ऐसी इच्छा किसी भी प्रतिफल के आधार पर नहीं होनी चाहिए सिवाय इसके कि प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन रोगोपचार के प्रयोजनार्थ उसके मानव-अंग का प्रयोग किया जाए । यह इच्छा इसके जीवनकाल के दौरान या उसकी मृत्यु के पश्चात् मानव-अंग के निकाले जाने के संबंध में हो सकती है । दाता द्वारा व्यक्त की गई किसी भी इच्छा के न होने की स्थिति में मृतक के निकट नातेदार को उसी प्रकार विनिश्चय लेने का अधिकार होगा जिस प्रकार मृतक को उसके जीवनकाल के दौरान होता परंतु ऐसा तब संभव है जब मृतक ने अपनी इच्छा अन्यथा व्यक्त की हो । कोई जीवित व्यक्ति इस बाबत किसी व्यक्ति को यह प्राधिकार नहीं दे सकता है कि उसके मरणोपंरात उसके मानव-अंग का प्रतिरोपण उसकी इच्छानुसार किसी व्यक्ति विशेष के शरीर में कर दिया जाए और वह दाता केवल अपने जीवनकाल के दौरान ही अपने अंग का प्रतिरोपण अपनी इच्छा के व्यक्ति के शरीर में करा सकता है ।

69. हमें दोबारा कहना पड़ रहा है कि यह देखा गया है कि प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन कानूनी पदधारियों और अन्य पदधारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि मानव-अंग के प्रतिरोपण के संबंध में कोई भी वाणिज्यिक संव्यवहार नहीं किया गया है, जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है । प्राप्तिकर्ता के शरीर में मानव-अंग को प्रतिरोपित किए जाने के लिए दाता को तीन परिस्थितियों में प्राधिकृत किया जा सकता है अर्थात् (i) प्राप्तिकर्ता के साथ स्नेह (ii) प्राप्तिकर्ता के साथ लगाव या (iii) विशेष कारण । प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन "विशेष कारण" को परिभाषित नहीं किया गया है । इसके अधीन प्राधिकार समिति को व्यापक कार्यक्षेत्र दिया गया है जिसके अधीन वह

यह मूल्यांकन कर सकती है कि दाता वास्तव में प्रतिरोपण के लिए अंग का संदान किए जाने हेतु इच्छुक है या नहीं । इस अधिनियम की भाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राधिकार समिति मात्र इस आधार पर अंग निकाले जाने को नामंजूर नहीं कर सकती कि दाता की इच्छा का आधार स्नेह या लगाव नहीं है क्योंकि "विशेष कारण" अभिव्यक्ति भी बहुत महत्वपूर्ण है जिसका अर्थ अत्यंत व्यापक है और इसे व्यर्थ नहीं समझा जा सकता क्योंकि इस अभिव्यक्ति से विधायी आशय भी स्पष्ट होता है।

70. जैसाकि न्यायालय ने विचार किया है, लोग संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेते हुए बड़ी संख्या में आवेदन कर रहे हैं जिनमें उन मुद्दों को उठाया गया है जिनका संबंध अस्पतालों सहित ऐसे कानूनी निकायों से है जो प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन बहुत-से उपबंधों को कार्यान्वित करने से बचते हैं, न्यायालय ने इस संबंध में सामान्य प्रकृति के कतिपय निदेश जारी करना उचित समझा है जिनका अनुपालन अस्पतालों और प्राधिकार समिति को करना चाहिए ।

71. यह ध्यान में रखना होगा कि प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 2(ग) के अर्थान्तर्गत धारा 9 की उपधारा (4) के खंड (क) और खंड (ख) के अधीन गठित प्राधिकार समिति के समक्ष फाइल किए गए आवेदन का निपटारा समीचीन रूप से किया जाना चाहिए क्योंकि इस प्रक्रिया का सीधा संबंध मानव जीवन से है । दाता और प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन का निपटारा इस अधिनियम और उसके अन्तर्गत विरचित नियमों के अधीन अतिशीघ्र किया जाना चाहिए ।

72. प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन मानव-अंगों का वाणिज्यिक संव्यवहार पूर्णतया प्रतिषिद्ध है जैसाकि पहले भी बताया जा चुका है । ये समझने वाली बात है कि ऐसा उपबंध इसलिए विरचित किया गया है कि रोगोपचार के लिए मानव-अंगों की पर्याप्त संख्या उपलब्ध नहीं है और आयुर्विज्ञान के विकास के साथ उक्त प्रयोजन के लिए मानव-अंगों की मांग सारभूत रूप से बढ़ी है ।

73. प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने

पर न्यायालय की यह राय है कि प्राधिकार अधिनियम अंग संदान किए जाने के लिए दाताओं को प्रोत्साहित करता है या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्राधिकृत व्यक्तियों को रोगोपचार के प्रयोजनार्थ मृतक के अंगों का भंडार किए जाने के लिए भी प्रोत्साहित करता है । इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी का यह कर्तव्य है कि वह मृतक या उस व्यक्ति के निकट नातेदार को जिसकी मस्तिष्क-मृत्यु हो चुकी है, इस बात से अवगत कराए कि उसको यह विकल्पक उपलब्ध है कि वह रोगोपचार के लिए मृतक के शरीर से मानव-अंग निकाले जाने को प्राधिकृत कर सकता है । न्यायालय का यह मत है कि लोगों को इस अधिनियम के उपबंधों का बिल्कुल ज्ञान नहीं है । ऐसे लोग भी इस अधिनियम से अनभिज्ञ हैं जो मृत्यु के पश्चात् मानव-अंग निकाले जाने पर विचार करते हुए इसे प्राधिकृत कर सकते थे । न्यायालय की यह राय है कि लोगों को इस उपबंध की जानकारी होने से जीवित व्यक्तियों के शरीर से अंग निकाले जाने के मामलों की संख्या में कमी आ सकती है । तद्नुसार, राज्य प्रत्यर्थियों को इस संबंध में कानूनी पदधारियों को उपलब्ध कराई गई सुविधाओं की सूची और आवश्यक निदेश जारी किया जाना उचित माना गया है ताकि इस अधिनियम का लक्ष्य और उद्देश्य पूरा हो सके ।

74. इन तथ्यों और परिस्थितियों में कानूनी उपबंधों पर पूर्ण रूप से विचार करने पर, जैसेकि ऊपर चर्चा की गई है, निम्न सामान्य निदेश जारी किए जाते हैं :–

> "(I) जब एक बार प्रतिरोपण अधिनियम की धारा 2(ग) के अर्थान्तर्गत प्राधिकार समिति जो इस अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) के खंड (क) और खंड (ख) के अधीन गठित की गई है, को इस अधिनियम और उसके अन्तर्गत विरचित नियम के अधीन अनुध्यात संयुक्त आवेदन प्राप्त हुआ है, इसलिए प्रतिरोपण नियम 7 के उप-नियम (3) के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसरण में त्वरित कार्यवाही करना आज्ञापक होगा । यदि संयुक्त आवेदन में किसी भी औपचारिकता की कमी पाई जाती है तब राज्य सरकार या अस्पताल/चिकित्सा व्यवसायी विधि के अनुसरण में अग्रसक्रियता से उस आवेदन को प्रस्तुत कराएंगे ।

(II) प्रतिरोपण नियम के नियम 7 के उप-नियम (3) के अनुसरण में मूल्यांकन किए जाने के पश्चात् प्राधिकार समिति यथाशीघ्र विनिश्चय करेगी जो प्रतिरोपण नियम के नियम 23 के अनुसरण में किसी मामले विशेष की अपेक्षाओं पर निर्भर होगा ।

(III) ऐसे आवेदन का निपटारा इसके प्रस्तुत किए जाने की तारीख से एक मास के भीतर अंतिम रूप से किया जाना चाहिए ।

(IV) न्यायालय को प्राधिकार समिति से यह प्रत्याशा है कि जो मामले उसके समक्ष प्रतिरोपण अधिनियम के अधीन प्रस्तुत किए जाते हैं उनमें वह सहानुभूतिक रूप से कार्य करे और इस अधिनियम के अन्तर्गत विरचित नियमों के अधीन आज्ञापक कानूनी अपेक्षाओं के साथ समझौता किए बिना कार्यवाही करे ।

(V) वर्तमान के लिए, न्यायालय ने विचार किए जाने हेतु ऐसे मामलों को चुना है जो प्राधिकार समिति के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं और उसी के समक्ष लंबित हैं । तद्नुसार को यह निदेश दिया गया है कि वह प्रत्येक सप्ताह विशेषकर प्रत्येक गुरूवार को ऐसे मामलों पर विचार करे । इसीलिए न्यायालय ऐसे मामलों की संख्या जानना चाहता है जो प्राधिकार समिति के समक्ष लंबित हैं, मामले की गंभीरता पर विचार करते हुए ऐसे आवेदनों के निपटारे में हुए विलंब से घोर क्षति पहुंची है ।

(VI) जब एक रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी या कोई मेडिकल संस्था किसी रोगी की परीक्षा करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि रोगी की बीमारी का इलाज मानव-अंग के प्रतिरोपण से किया जा सकता है जिसके लिए अंग का संदान किया जाना अपेक्षित है और सभी औपचारिकताओं को पूरा करना आवश्यक है तब प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत विरचित नियमों के अधीन गठित प्राधिकार समिति या अन्य कोई भी कानूनी समिति के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किए जाने हेतु रोगी की सहायता और मदद करने के लिए वह संस्था बाध्य होगी ताकि अतिशीघ्र आवेदन प्रस्तुत किए जाने को सुकर बनाया जा सके ।"

75. यद्यपि वर्तमान आदेश द्वारा इस मामले का निपटारा किया जा रहा है, फिर भी इसे तारीख 8 मार्च, 2021 को पुन: सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाएगा ताकि राज्य प्रत्यर्थी अपने शपथ-पत्र में लंबित मामलों की संख्या का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत कर सकें । यदि कोई जिला प्राधिकार समिति प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों के अधीन गठित की गई है तब इस तथ्य को भी शपथ-पत्र में निगमित किया जाना चाहिए । न्यायालय को यह जानने की भी आवश्यकता है कि क्या अस्पताल द्वारा गठित प्राधिकार समितियां भी हैं जो बिहार राज्य में कार्यरत हैं और यदि ऐसी समितियां कार्यरत हैं तब उन अस्पतालों की सूची भी उक्त शपथ-पत्र में दी जाए ।

76. शपथ-पत्र में यह भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि क्या प्रतिरोपण नियम के नियम 33 के अधीन अपील प्राधिकारी के समक्ष कोई अपील लंबित है और यदि ऐसा है तो यह उल्लेख किया जाए कि कितनी अपीलें और किस प्रक्रम पर लंबित हैं ।

77. मैं प्रधान सचिव, स्वास्थ्य विभाग, बिहार सरकार को यह निदेश देना उचित समझता हूं कि वे सशपथ यह बताएं कि लोगों और हितधारकों तथा चिकित्सकों को प्रतिरोपण अधिनियम के सारभूत सिद्धांतों की जानकारी देने के लिए क्या प्रयास किए गए हैं ताकि लोकहित में प्रतिरोपण अधिनियम के उपबंधों का लाभप्रद और प्रभावी कार्यान्वयन किया जा सके ।

78. याची के मामले पर विचार करने पर पता चलता है कि प्राधिकार समिति को आज से एक सप्ताह के भीतर प्रस्तावित दाता और प्रस्तावित प्राप्तिकर्ता की ओर से संयुक्त रूप से फाइल किए गए आवेदन को अंतिम रूप से विनिश्चित करने का निदेश दिया जाता है ।

79. इस मामले का निपटारा करने से पूर्व मैं श्रीमद भगवत गीता के कतिपय श्लोक निर्दिष्ट करना चाहूंगा जो निम्न प्रकार हैं :–

(प्रकाशक द्वारा उक्त पाठ का लोप किया गया है)

"सारभूत शरीर को क्रियाओं का क्षेत्र जाना जाता है ; जो इसे जानते हैं वे इसका वर्णन क्रियाओं के क्षेत्र के रूप में करते हैं ।

(प्रकाशक द्वारा उक्त पाठ का लोप किया गया है)

जल, वायु, अग्नि और ईथर पृथ्वी के मुख्य तत्वों में आते हैं ; मिथ्या, अभिमान, आध्यात्मिक बुद्धि, अव्यक्त तत्व सारभूत रूप में मस्तिष्क सहित दस इन्द्रियां हैं और ध्वनि, दृश्य, स्वाद, संपर्क तथा गंध पांच अलग प्रकार की इन्द्रियां हैं ; इच्छा तिरस्कार, प्रसन्नता, तनाव, को मस्तिष्क की अवधारणात्मक स्थिति कहा जाता है ; इन सभी को क्रियाओं का क्षेत्र कहा जाता है जिनका उपांतरण जन्म से लेकर मृत्यु तक भौतिक शरीर में होता रहता है ।

(प्रकाशक द्वारा उक्त पाठ का लोप किया गया है)

ज्योतिष की दृष्टि से शुभ मुहूर्त पर पवित्र स्थान पर जो दान बिना किसी लालच के किया जाता है तब वह दान एक अच्छा गुण माना जाता है ।

(प्रकाशक द्वारा उक्त पाठ का लोप किया गया है)

जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्र त्याग कर नए वस्त्र ग्रहण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर ग्रहण करती है।" (पटना उच्च न्यायालय 2019 की सी.डब्ल्यू.जे.सी. सं. 1494 : तारीख 26-02-20-21, 58/58)"

80. उपरोक्त श्लोक प्रेरणात्मक हैं और श्लोक सं. 13.7 में उल्लिखित "भौतिक शरीर" का अर्थ संभवतः जन्म से मृत्यु तक का जीवन काल है ।

81. तद्नुसार, यह याचिका उपरोक्त निदेशों के साथ मंजूर की जाती है ।

82. तथापि, लागत के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

अस.

सुनेश सुधाकर रेले

बनाम

सीमा सुनेश रेले

(2012 की कुटुंब न्यायालय अपील सं. 106)

तारीख 7 अप्रैल, 2021

न्यायमूर्ति आर. डी. धनुका और न्यायमूर्ति वी. जी. बिष्ट

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) – धारा 27(घ) – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा पति के प्रति मानसिक क्रूरता – पत्नी द्वारा पति को बताया जाना कि अपीलार्थी के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किया गया है – पत्नी द्वारा पति और उसके परिजनों को गालियां और मारपीट की धमकी दिया जाना – पत्नी द्वारा यह साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना कि पति के कारण उसका गर्भपात हुआ है – पत्नी का प्रेम-प्रसंग और जारता में पाया जाना – प्रत्यर्थी पत्नी का पति और उसके परिजनों के साथ गाली-गलौज करना और अन्य किसी व्यक्ति के साथ जारता की दशा में रहने को जीवन की छोटी-मोटी नोक-झोंक नहीं माना जा सकता और ऐसा करना वैवाहिक अपचार तथा क्रूरता की कोटि में आता है जिसके आधार पर पति विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है और निचले न्यायालय का निर्णय न्यायोचित नहीं है ।

इस मामले में अपीलार्थी-पति द्वारा 2010 की अर्जी सं. ए-22 में कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2012 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की गई है जिसके द्वारा, विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 27(घ) के अधीन उपबंधित क्रूरता के आधार पर फाइल की गई विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपरोक्त उदाहरणों से न्यायालय को यह पता चलता है कि पति-पत्नी के बीच संबंध में सामान्य छोटी-मोटी नोक-झोंक नहीं थी । प्रत्यर्थी-पत्नी समय-समय पर अन्य व्यक्ति के साथ प्रेम-प्रसंग होने की

बात कहती थी और उसके द्वारा जारता की दशा में रहना जैसी स्थिति को किसी भी प्रकार वैवाहिक अपचार कहा जा सकता है जिससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह पति के प्रति क्रूरता है । अपीलार्थी-पति के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैवाहिक गृह छोड़ने के पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी, अपीलार्थी को फ़ोन पर भद्दे-भद्दे मेसेज भेजा करती थी । प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके द्वारा उपरोक्त मेसेजों से इनकार नहीं किया गया है और न ही उनकी सत्यता पर कोई प्रश्न उठाया गया है । उपरोक्त मेसेज निश्चित रूप से आपत्तिजनक हैं । इससे प्रत्यर्थी-पत्नी का अपने पति के प्रति स्वभाव, आचरण और व्यवहार का पता चलता है जो न केवल क्रोधपूर्ण और अशिष्ट था बल्कि अपमानजनक भी था । वह लम्बे समय तक अपने पति को निरंतर "हरामी" कहकर पुकारती रही । इस प्रकार का छिद्रान्वेषी कृत्य निश्चित रूप से पूर्णतया असहनीय था । अपीलार्थी पति के इस अभिसाक्ष्य में सच्चाई दिखाई देती है कि प्रत्यर्थी-पत्नी के अशिष्ट और क्रोधपूर्ण आचरण से उसका जीवन दुखदायी बन गया था क्योंकि अभद्र भाषा से उसकी मानसिक शान्ति भंग हो रही थी । इन परिस्थितियों से सुखी वैवाहिक जीवन के लिए अनुकूल नहीं माना जा सकता । प्रत्यर्थी-पत्नी का इस संबंध में कठोर व्यवहार निश्चित रूप से क्रूरता की कोटि में आता है । प्रत्यर्थी-पत्नी के इस व्यवहार को वैवाहिक जीवन की छोटी-मोटी नोक-झोंक मानना कल्पना के परे है और ये घटनाएं अत्यंत गंभीर हैं । जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है हमने न केवल प्रत्यर्थी-पत्नी के विभिन्न क्रियाकलापों का उल्लेख किया है अपितु उसका आचरण और आशय भी आपत्तिजनक पाया है । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने पक्षकथन के समर्थन में अपने पिता की परीक्षा कराई है । उसके पिता जयराम सवलेराम मोजाद ने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान यह कथन किया है कि पति और उसके माता-पिता द्वारा तंग किए जाने और इस भय के कारण कि उसकी पुत्री के साथ कभी भी कोई अप्रिय घटना घटित हो सकती है, उसकी पुत्री ने तारीख 23 अप्रैल, 2009 को वैवाहिक गृह छोड़ दिया । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे प्रत्यर्थी-पत्नी का यह वृत्तांत साबित किया जा सके कि कुछ मुख्य कारणों से जैसे उसके पति और सास-श्वसुर के व्यवहार से उसकी मानसिक दशा का बिगड़ना, उसका गर्भपात हो गया था । आश्चर्य की बात है कि

विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय के पैरा 26 में यह उल्लेख किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी का गर्भपात हो गया था । इसके अन्यथा भी, प्रत्यर्थी-पत्नी और उसके पिता के साक्ष्य में घोर विरोधाभास दिखाई पड़ता है, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा उस पर भी विचार नहीं किया गया है । इन सब बातों के बावजूद विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने इस तथ्य को भी अनदेखा किया है कि अपीलार्थी-पति का परिसाक्ष्य उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान विचलित नहीं हुआ है । यह ऐसा मामला है जिसमें अपीलार्थी-पति के साक्ष्य के अनुसार साक्षियों की प्रतिपरीक्षा कई अवसरों पर नहीं कराई गई है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अनुचित निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं जो अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के साथ संगत नहीं है । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 27, 28, 29, 30, 37, 38, 41 और 44)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 589 =
2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7730 :
सुमन कपूर बनाम **सुधीर कपूर** । 15, 35

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की कुटुंब न्यायालय अपील सं. 106.

2010 की अर्जी सं. ए-22 में कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2012 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध कुटुंब न्यायालय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वी. वाई. सांगलीकर

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. जी. बिष्ट ने दिया ।

न्या. बिष्ट – यह अपील अपीलार्थी-पति द्वारा 2010 की अर्जी सं. ए-22 में कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2012 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा, विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में

"अधिनियम" कहा गया है) की धारा 27(घ) के अधीन उपबंधित क्रूरता के आधार पर फाइल की गई विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज की गई है ।

2. अपीलार्थी-पति का विवाह 10 जुलाई, 2008 को प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ विवाह-रजिस्ट्रार, ओल्ड कस्टम हाउस, शहीद भगत सिंह मार्ग, फोर्ट, मुम्बई-1 के समक्ष संपन्न हुआ । पक्षकारों के यहां इस विवाह-बंधन से किसी संतान ने जन्म नहीं लिया ।

3. अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उनके विवाह के दिन से ही प्रत्यर्थी-पत्नी अधिक प्रसन्न नहीं थी और वह अपीलार्थी और उसके परिजनों से ठीक प्रकार बात नहीं कर रही थी । विवाह के अगले दिन ही प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी और उसके माता-पिता को बताया कि उसके पिता ने जबरदस्ती उसका विवाह कराया है और जिस व्यक्ति से वह विवाह करना चाहती थी उसके साथ विवाह नहीं कराया है और अपीलार्थी-पत्नी का इस विवाह को बनाए रखने का कोई इरादा नहीं है और वह इस विवाह-बंधन को तोड़ने के लिए सब कुछ करेगी क्योंकि वह विवाह-विच्छेद चाहती है ।

4. अपीलार्थी-पति ने यह भी अभिकथन किया है कि उनके विवाह के पश्चात् उसकी पत्नी उसके और उसके माता-पिता जो वरिष्ठ नागरिक हैं, के साथ क्रूर और अभद्र व्यवहार करने लगी थी । वह तुच्छ बातों पर उसके माता-पिता को गालियां देती थीं और उनके साथ अभद्र शब्दों का प्रयोग करती थी और उसने कई अवसरों पर उनके साथ मारपीट करने की धमकी भी दी थी ।

5. अपीलार्थी-पति ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसे अन्य किसी लड़के के साथ प्रेम-प्रसंग होने के संबंध में सूचित किया और उस लड़के को प्रत्यर्थी का पिता अच्छी तरह जानता था किंतु प्रत्यर्थी का पिता इस संबंध के विरुद्ध था, प्रत्यर्थी के पिता ने इस प्रेम-प्रसंग के संबंध में अपीलार्थी और उसके माता-पिता को नहीं बताया था और इस महत्वपूर्ण जानकारी को छिपाया था और उसने प्रत्यर्थी-पत्नी पर उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने का दबाव बनाया । अपीलार्थी और उसके माता-पिता इन सब बातों को लेकर मानसिक क्रूरता का शिकार हुए हैं । प्रत्यर्थी-पत्नी ने इस विवाह में रूचि न लेने का आशय भी व्यक्त कर

दिया था और उसने यह भी कहा था कि वह विवाह के पश्चात् भी अन्य व्यक्तियों के साथ लैंगिक संबंध रखेगी जिसका एकमात्र उद्देश्य समाज में अपीलार्थी-पति और उसके परिजनों का अपमान करना था ।

6. अपीलार्थी-पति के अनुसार वैवाहिक जीवन को बचाए रखने के लिए वह प्रत्यर्थी-पत्नी के इस क्रूर व्यवहार को सहन कर रहा था किंतु विवाह के दो मास पश्चात् अर्थात् सितंबर, 2008 में प्रत्यर्थी-पत्नी ने पति के साथ झगड़ना आरंभ कर दिया और बिना किसी कारण उसे गालियां देने लगी । यहां तक कि प्रत्यर्थी-पत्नी वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई और दस दिन बाद विवाह-विच्छेद के लिए वापस आई ।

7. अपीलार्थी-पति ने यह भी अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी-पति उसके साथ लैंगिक संबंध बनाने से भी बचा करती थी और कहती थी कि उसे लैंगिक संतोष अन्य पुरुषों से ही प्राप्त होता है और चूंकि अपीलार्थी-पति का कद लंबा नहीं था, उसके सिर पर प्राकृतिक बाल नहीं थे और वह विग पहनता था इसलिए वह उसके साथ संबंध नहीं बना सकी ।

8. परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी-पत्नी 23 अप्रैल, 2009 को वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई और उसके सभी आभूषण ले लिए । वैवाहिक गृह छोड़ने के पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने पति को कानूनी नोटिस भी भेजा और उसे बताया कि वह गर्भवती है जबकि वह गर्भवती नहीं थी और जिस समय उसने घर छोड़ा था उसके गर्भवती होने का कोई भी संकेत दिखाई नहीं दिया था ।

9. अपीलार्थी-पति ने अंत में यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी ने उसका जीवन कष्टदायक बना दिया था और अब एक साथ रहना और वैवाहिक जीवन का आनन्द लेना अत्यंत कठिन है । इसी पृष्ठभूमि के विरुद्ध अपीलार्थी ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की थी ।

10. उपरोक्त अर्जी का विरोध प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा लिखित कथन (प्रदर्श 13) फाइल करते हुए किया गया । अर्जी में किए गए अभिकथनों से प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा इनकार किया गया । पत्नी का यह पक्षकथन है कि उसने कभी भी अपने पति से विवाह-विच्छेद की मांग नहीं की बल्कि अपीलार्थी ही विवाह-विच्छेद के लिए निरंतर कहता रहता था क्योंकि वह

अन्य किसी लड़की के साथ सुख भोगने के लिए पुर्नविवाह करना चाहता था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने इस बात से इनकार किया कि वह अपने सास-श्वसुर के साथ दुर्व्यवहार करती थी या कभी उसने उन पर हमला किया था । प्रत्यर्थी-पत्नी का यह पक्षकथन है कि विवाह के पूर्व उसका किसी भी अन्य व्यक्ति के साथ कोई प्रेम-प्रसंग नहीं था और चूंकि अपीलार्थी और उसके पिता उससे दहेज के रूप में धन और फ्लैट की मांग किया करते थे और वह पूरी नहीं की जा सकी इसलिए उन्होंने प्रत्यर्थी-पत्नी के चरित्र पर कीचड़ उछाला है । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह भी अभिकथन किया है कि अपीलार्थी-पति द्वारा प्रपीड़न और मानसिक यातना दिए जाने के कारण उसका गर्भपात हो गया था ।

11. प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार वह सदैव अपने पति के साथ शांतिपूर्वक वैवाहिक जीवन बिताने के लिए तैयार रहती थी और चूंकि अर्जी में कोई सार नहीं है इसलिए वह खारिज की जानी चाहिए ।

12. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने विवाद्यक (प्रदर्श 15) विरचित किए । साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसके साथ अधिनियम की धारा 27(घ) के अधीन क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया था । तद्नुसार विद्वान् न्यायाधीश ने विवाह-विच्छेद अर्जी खारिज कर दी ।

13. अपीलार्थी-पति की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सांगलीकार ने यह दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने अर्जी खारिज करने में घोर त्रुटि की है । उन्होंने यह दलील दी है कि विद्वान् न्यायाधीश अधिनियम की धारा 27(घ) का मूल्यांकन करने में असफल रहे हैं और उन्हें उक्त उपबंधों का परिशीलन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए था कि अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ।

14. आगे दलील देते हुए विद्वान् काउंसेल ने यह प्रतिवाद किया कि कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश को यह अभिनिर्धारित करना चाहिए था कि प्रत्यर्थी का व्यवहार अपीलार्थी और उसके माता-पिता के प्रति अत्यंत क्रूर था क्योंकि वह अपीलार्थी और उसके माता-पिता को

निरंतर परेशान करती थी, उन्हें गालियां देती थी और उन पर हमला करती थी ।

15. इसी प्रकार प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी-पति के साथ विवाह बनाए रखने के पक्ष में नहीं थी और अपीलार्थी से धन झपटने और उसका शोषण करने में लगी रहती थी और यह बात इस तथ्य से साबित होती है कि उसने विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अपनी सहमति देने हेतु 10 लाख रुपए की मांग की थी । विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान उस नोटिस की ओर दिलाया है जिसने न केवल अभ्रद शब्दों का प्रयोग किया गया है अपितु पत्नी की ओर से 10 लाख रुपए की मांग भी की गई है । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि चूंकि कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करने में पूर्णतया असफल रहे हैं, इसलिए आक्षेपित निर्णय और आदेश अपीलार्थी-पति की अर्जी मंजूर करते हुए अपास्त किए जाने योग्य है । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर**[1] वाले मामले का भी अवलंब लिया है ।

16. मामले की सुनवाई के दौरान पुकारे जाने पर प्रत्यर्थी-पत्नी की ओर से नोटिस तामील कराए जाने के बावजूद कोई भी पेश नहीं हुआ है ।

17. हमने साक्ष्य और आवश्यक दस्तावेजों तथा अभिलेख का परिशीलन बहस के दौरान किया है ।

18. "क्रूरता" शब्द को इस अधिनियम के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है । क्रूरता के दो प्रकार हैं, पहली शारीरिक क्रूरता है और दूसरी मानसिक क्रूरता कहलाती है । पति-पत्नी के बीच छोटी-मोटी नोंक-झोक क्रूरता की कोटि में नहीं आती है ।

वर्तमान मामले में विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के विरुद्ध क्रूरता कारित की है और क्या उपरोक्त आधार पर अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह विघटित किया जाना चाहिए ।

19. अपीलार्थी-पति ने अपने पक्षकथन के समर्थन में स्वयं अपनी

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 589 = 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7730

और अपने पिता सुधाकर सुरेन्द्रनाथ रेले की परीक्षा कराई है । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपनी और अपने पिता जयराम सवलेराम मोजाद की परीक्षा कराई गई है ।

20. अपीलार्थी-पति ने शपथपत्र फाइल किया है जो अभिलेख के पृष्ठ 64 पर है । अपने शपथ-पत्र में अपीलार्थी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि विवाह के अगले दिन ही प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसे और उसके माता-पिता को बताया कि उसके पिता ने उससे विवाह करने के लिए विवश किया था और उन्होंने उस व्यक्ति से विवाह करने की अनुमति नहीं दी जिससे वह विवाह करना चाहती थी और इस विवाह को बनाए रखने का उसका कोई इरादा नहीं है और वह इस विवाह-बंधन को समाप्त करने का पूरा प्रयास करेगी और वह विवाह-विच्छेद चाहती है । अपीलार्थी-पति ने यह भी कथन किया है कि हनीमून के दौरान भी वह उसे प्रतिदिन गालियां देती थी और उसे बताती रहती थी कि उसके पिता ने उसे इस विवाह के लिए विवश किया था । हनीमून से वापस आने के पश्चात् भी प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसे और उसके माता-पिता को प्रतिदिन गालियां दी । अपीलार्थी के माता-पिता वरिष्ठ नागरिक थे फिर भी उन्हें छोटी-मोटी बातों को लेकर भी गालियां दी जाती थी और उसने कई अवसरों पर उनके साथ मारपीट करने की धमकी भी दी थी ।

21. अपीलार्थी-पति के साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसे उस व्यक्ति के बारे में भी बताया था जिसके साथ उसका प्रेम-प्रसंग चल रहा था और प्रत्यर्थी के पिता को भी इस तथ्य की जानकारी थी किंतु प्रत्यर्थी का पिता उस व्यक्ति के साथ बने संबंध के विरुद्ध था और प्रत्यर्थी के पिता ने इस तथ्य की जानकारी अपीलार्थी और उसके माता-पिता को नहीं दी । प्रत्यर्थी-पत्नी के कार्यालय का समय पूर्वाह्न 9.30 बजे से अपराह्न 6.00 बजे तक था लेकिन वह प्रतिदिन अपराह्न 9.00 बजे के बाद ही घर आया करती थी । जब प्रत्यर्थी-पत्नी को उसका कथन दिखाया गया तो उसने यह बताया कि वह यह सब जानबूझकर कर रही है क्योंकि उसे इस विवाह में कोई रुचि नहीं है । उसने यहां तक कहा कि वह विवाह के पश्चात् भी अन्य पुरुषों के साथ लैंगिक संबंध बनाए रखेगी ताकि समाज में उसके पति और उसके परिवार की बदनामी हो सकेगी । वह अपराह्न 9.00 बजे के पश्चात् घर

वापस आती थी और अपीलार्थी को बताया करती थी कि उसने किस प्रकार अन्य पुरुषों के साथ यौन आनंद लिया और इसीलिए प्रत्यर्थी ने कहा कि वह विवाह के पश्चात् भी अन्य पुरुषों के साथ संबंध रखेगी । वह अपीलार्थी-पति के साथ शारीरिक संबंध बनाने से बचती हुई और शिकायत करती थी कि उसका कद छोटा है और उसका शारीरिक गठन भी अच्छा नहीं है तथा सिर पर बाल न होने की वजह से वह विग का प्रयोग करता है । इस प्रकार तंग किए जाने के कारण अपीलार्थी के माता-पिता नवंबर, 2008 में पुणे चले गए ।

22. साक्ष्य में यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी उसे सदैव गालियां देती थी और उसके लिए "हरामी" जैसे भद्दे शब्द का प्रयोग करती थी । प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी के पिता को "थेरडा" और भ्रष्टाचारी कहती थी और उसने उस पर हमला करने का प्रयास भी किया था । परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 23 अप्रैल, 2009 को अपने सोने के आभूषणों को लेकर अपने वैवाहिक गृह से चली गई और उसने वहां से पत्र (प्रदर्श-सी) भेजा ।

23. वैवाहिक गृह छोड़ने के समय यद्यपि वह गर्भवती नहीं थी फिर भी उसने तारीख 10 जून, 2009 को अपने वकील द्वारा भेजे गए कानूनी नोटिस में उसने अपने गर्भवती होने की जानकारी दी । 26 अक्तूबर, 2009 के नोटिस के माध्यम से प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी से 10 लाख रुपए की मांग विवाह-विच्छेद हेतु अपनी सहमति देने के लिए की । इस प्रकार, अपीलार्थी के अनुसार उसके और उसके परिवार के साथ कई अवसरों पर की गई क्रूरता को दृष्टिगत करते हुए उसने यह प्रार्थना की कि उसके और प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच विवाह, विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करते हुए, विघटित किया जाए ।

24. क्रूरता के मामले को सिद्ध करने के लिए अपीलार्थी-पति द्वारा साक्ष्य के रूप में कई उदाहरण उद्धरित किए गए हैं जो निम्न प्रकार है :–

> "(i) प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के अगले दिन ही अपीलार्थी-पति और उसके माता-पिता को बताया कि प्रत्यर्थी के पिता ने उसे इस विवाह के लिए विवश किया था और उसका इस विवाह को आगे

बनाए रखने का कोई आशय नहीं है और वह इसे समाप्त करने का पूरा प्रयास करेगी और वह अपीलार्थी से विवाह-विच्छेद चाहती है ;

(ii) अपीलार्थी-पति और उसके माता-पिता को सदैव गालियां दी जाती थी ;

(iii) प्रत्यर्थी-पत्नी उसे "हरामी" कहकर पुकारती थी और उसके पिता को "भ्रष्टाचारी" और "थेरडा" कहती थी ;

(iv) प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह प्रकट किया कि उसका किसी लड़के के साथ प्रेम-प्रसंग है जिसकी जानकारी प्रत्यर्थी के पिता को थी ;

(v) प्रत्यर्थी ने कहा कि वह विवाह के पश्चात् भी अन्य पुरुषों के साथ लैंगिक संबंध बनाए रखेगी जिसमें उसका एकमात्र आशय अपीलार्थी और उसके परिवार को समाज में बदनाम करना होगा ;

(vi) प्रत्यर्थी-पत्नी अपराह्न 9.00 बजे के पश्चात् अपने कार्यालय से वापस आती थी और उसने अपीलार्थी को बताया कि उसने उस दिन अन्य पुरुषों के साथ किस प्रकार यौन आनंद लिया ; और

(vii) प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी-पति के साथ यौन संबंध बनाने से बचती थी और उससे कहती थी कि उसकी कद-काठी अच्छी नहीं है और सिर पर बाल न होने की वजह से वह विग का प्रयोग करता है ।"

25. यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त उदाहरणों से प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा मात्र इनकार ही किया गया है जैसा लिखित कथन में औपचारिक रूप में किया जाता है और उसने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान भी इसी प्रकार दोहराया है ।

26. उपरोक्त सभी उदाहरणों को अभिलेख पर दृढ़तापूर्वक सिद्ध किया गया है और इतना ही नहीं, यह आश्चर्य की बात है कि इन शिकायतों का प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा प्रतिपरीक्षा के दौरान तनिक भी खंडन नहीं किया गया है । अपीलार्थी-पति के वृत्तांत को उसके अभिवाक् के अनुसरण में प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा कोई चुनौती नहीं दी गई है ताकि अपीलार्थी के कथन की सत्यता की परख हो पाती ।

27. उपरोक्त उदाहरणों से हमें यह पता चलता है कि पति-पत्नी के बीच संबंध में सामान्य छोटी-मोटी नोक-झोंक नहीं थी । प्रत्यर्थी-पत्नी समय-समय पर अन्य व्यक्ति के साथ प्रेम-प्रसंग होने की बात कहती थी और उसके द्वारा जारता की दशा में रहना जैसी स्थिति को किसी भी प्रकार वैवाहिक अपचार कहा जा सकता है जिससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह पति के प्रति क्रूरता है ।

28. अपीलार्थी-पति के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैवाहिक गृह छोड़ने के पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी, अपीलार्थी को फ़ोन पर भद्दे-भद्दे मेसेज भेजा करती थी । एस एम एस की टंकित की हुई सूची प्रदर्श-जे के रूप में संलग्न की गयी है जो निम्न प्रकार है :

(प्रकाशक द्वारा उक्त सूची का लोप किया गया है)

29. प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके द्वारा उपरोक्त मेसेजों से इनकार नहीं किया गया है और न ही उनकी सत्यता पर कोई प्रश्न उठाया गया है । उपरोक्त मेसेज निश्चित रूप से आपत्तिजनक हैं । इससे प्रत्यर्थी-पत्नी का अपने पति के प्रति स्वभाव, आचरण और व्यवहार का पता चलता है जो न केवल क्रोधपूर्ण और अशिष्ट था बल्कि अपमानजनक भी था । वह लम्बे समय तक अपने पति को निरंतर "हरामी" कहकर पुकारती रही । इस प्रकार का छिद्रान्वेषी कृत्य निश्चित रूप से पूर्णतया असहनीय था । अपीलार्थी पति के इस अभिसाक्ष्य में सच्चाई दिखाई देती है कि प्रत्यर्थी-पत्नी के अशिष्ट और क्रोधपूर्ण आचरण से उसका जीवन दुखदायी बन गया था क्योंकि अभद्र भाषा से उसकी मानसिक शान्ति भंग हो रही थी ।

30. इन परिस्थितियों से सुखी वैवाहिक जीवन के लिए अनुकूल नहीं माना जा सकता । प्रत्यर्थी-पत्नी का इस संबंध में कठोर व्यवहार निश्चित रूप से क्रूरता की कोटि में आता है । प्रत्यर्थी-पत्नी के इस व्यवहार को वैवाहिक जीवन की छोटी-मोटी नोक-झोंक मानना कल्पना के परे है और ये घटनाएं अत्यंत गंभीर हैं ।

31. अपीलार्थी-पति के साक्ष्य से यह पता चलता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी स्वयं अपने माता-पिता और भाई के साथ तारीख 23 अप्रैल, 2009

को अंतिम रूप से वैवाहिक गृह छोड़कर गई थी । उसने जाते समय, सूची के अनुसार, अपने आभूषण भी साथ ले लिए थे और घर की चाबी भी अपीलार्थी को सौंप दी थी क्योंकि उसका स्थायी रूप से वापस आने का कोई भी इरादा नहीं था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख लिखित में किया है । उक्त उल्लेख प्रदर्श-सी है ।

32. प्रदर्श-सी के मात्र पठन करने से ही यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी स्वयं अपनी इच्छा से सूची के अनुसार आभूषण लेकर तारीख 23 अप्रैल, 2009 को वैवाहिक गृह छोड़कर गई थी । अपीलार्थी-पति के इस साक्ष्य का समर्थन अपीलार्थी के पिता द्वारा किया गया है जिसकी परीक्षा न्यायालय में कराई गई है । अपीलार्थी के पिता सुधाकर सुरेन्द्रनाथ रेले ने स्पष्ट रूप से अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि जब प्रत्यर्थी घर छोड़कर गई थी तब उसने अपने आभूषण अपने साथ ले लिए थे । उस समय अपीलार्थी घर पर ही मौजूद था और उसने प्रत्यर्थी-पत्नी को समझाने का बहुत प्रयास किया किंतु उसने एक न सुनी । बल्कि प्रत्यर्थी ने अपने आभूषणों को ले जाने के संबंध में प्रदर्श-सी निष्पादित किया । अपीलार्थी-पति के इस साक्ष्य का खंडन उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा कहीं भी नहीं किया गया है ।

33. अपीलार्थी-पति के उपरोक्त साक्ष्य के विरुद्ध प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने साक्ष्य में यह उल्लेख किया है कि तारीख 4 अप्रैल, 2009 को उसने अपीलार्थी और उसके माता-पिता से सोने के आभूषणों की मांग की थी क्योंकि वह अपने चचेरे भाई/बहिन के विवाह में सम्मिलित होना चाहती थी, तथापि, उन्होंने प्रत्यर्थी को आभूषण देने से इनकार कर दिया, उसको गालियां दीं और उसे घर से बाहर निकाल देने की धमकी भी दी । इसलिए अपनी जान बचाने के लिए वह विवश होकर अपनी ससुराल छोड़कर चली गई ।

34. प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा दिया गया यह साक्ष्य उसके द्वारा निष्पादित प्रदर्श-सी से बिल्कुल भी मेल नहीं खाता है । इसके प्रतिकूल प्रदर्श-सी से यह दर्शित होता है कि उसने आभूषणों के संबंध में कोई शिकायत नहीं की थी । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा निष्पादित लिखित से तनिक

भी यह पता नहीं चलता है कि उसे घर छोड़ने और घर की चाबियां वापस करने के लिए विवश किया गया था ।

35. प्रत्यर्थी-पत्नी को उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रदर्श-सी दिखाया गया जिसे प्रदर्श-60 के रूप में चिह्नांकित किया गया । प्रत्यर्थी-पत्नी की प्रतिपरीक्षा से यह प्रतीत होता है कि उसे और उसके पिता को प्रदर्श-60 पर अपने-अपने हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया था । तथापि, मैं अपनी-अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया है कि उन्होंने अपीलार्थी-पति और उसके पिता के विरुद्ध प्रत्यर्थी-पत्नी और उसके पिता के हस्ताक्षर बलपूर्वक कराए जाने को लेकर पुलिस ने कोई भी शिकायत दर्ज नहीं कराई थी ।

36. **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर** (उपरोक्त) वाले मामले में पत्नी भविष्य उन्मुखी महिला थी जो अपने व्यवसाय को अपनी सफलता के लिए जारी रखना चाहती थी और इस प्रकार अपने पति के साथ निरंतर रूप से वास करने से बचती थी और वैवाहिक संबंध बनाने पर भी रोक लगाती थी । इसके अतिरिक्त, पत्नी द्वारा लिखे गए पत्रों से यह दर्शित होता है कि वह स्वतंत्र जीवन जीना चाहती थी और उसका पति उसके साथ ऐसे वैवाहिक संबंध न बनाए जिससे उसका भविष्य प्रभावित हो और इस प्रकार पत्नी विवाह-बंधन में कोई रुचि नहीं थी और उसका भारतीय संस्कृति में विश्वास नहीं था । यह भी पाया गया कि पत्नी अपने सास-श्वसुर को "भूत" कहती थी और गंभीर आरोप लगाती थी कि उसके पति ने किसी अमेरिकन महिला के साथ विवाह किया है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए पत्नी द्वारा प्रयोग की गई ऐसी भाषा मानसिक क्रूरता की कोटि में आती है ।

37. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है हमने न केवल प्रत्यर्थी-पत्नी के विभिन्न क्रियाकलापों का उल्लेख किया है अपितु उसका आचरण और आशय भी आपत्तिजनक पाया है ।

38. प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने पक्षकथन के समर्थन में अपने पिता की परीक्षा कराई है । उसके पिता जयराम सवलेराम मोजाद ने अपनी मुख्य

परीक्षा के दौरान यह कथन किया है कि पति और उसके माता-पिता द्वारा तंग किए जाने और इस भय के कारण कि उसकी पुत्री के साथ कभी भी कोई अप्रिय घटना घटित हो सकती है, उसकी पुत्री ने तारीख 23 अप्रैल, 2009 को वैवाहिक गृह छोड़ दिया ।

39. प्रत्यर्थी-पत्नी के पिता के साक्ष्य की संपुष्टि के लिए कोई भी संतोषजनक साक्ष्य उसकी पुत्री द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है । आश्चर्य की बात है कि अपीलार्थी-पति को उसकी पत्नी द्वारा प्रतिपरीक्षा में यह सुझाव दिया गया कि पत्नी को घसीट कर वैवाहिक गृह से बाहर निकाला गया था और इस सुझाव का पति द्वारा सीधे खंडन किया गया है । ऐसा दिया गया सुझाव न तो अभिवाक् के दौरान सृजित हुआ है और न ही प्रत्यर्थी-पत्नी या उसके पिता के परिसाक्ष्य द्वारा उसका समर्थन किया गया है । प्रत्यर्थी-पत्नी और उसके पिता द्वारा दिया गया साक्ष्य एक-दूसरे से टकराता है ।

40. अपीलार्थी पति के साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि जब पत्नी वैवाहिक गृह छोड़कर गयी थी तब वह गर्भवती नहीं थी और न ही उसके गर्भवती होने का कोई संकेत दिखाई दे रहा था । किन्तु उसने तारीख 10 जून, 2009 को अपने वकील द्वारा भेजे गए नोटिस में यह अभिकथन और दावा किया है कि वह गर्भवती थी । दूसरी ओर प्रत्यर्थी पत्नी का यह भी साक्ष्य है कि अपीलार्थी द्वारा निरंतर मानसिक यातना और धमकी दिए जाने से गर्भपात हो गया था जिस कारण वह बच्चे को जन्म न दे सकी । उनके इसी व्यवहार के कारण यह सब हुआ । बच्चे को जन्म न दे पाना प्रत्यर्थी पत्नी के लिए अपूरणीय क्षति थी और इसीलिए अपीलार्थी पति को चाहिए कि वह पत्नी का स्वास्थ्य बर्बाद करने के कारण उसे 10 लाख रुपए का संदाय करे ।

41. हमारा यह निष्कर्ष है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे प्रत्यर्थी-पत्नी का यह वृत्तांत साबित किया जा सके कि कुछ मुख्य कारणों से जैसे उसके पति और सास-श्वसुर के व्यवहार से उसकी मानसिक दशा का बिगड़ना, उसका गर्भपात हो गया था । आश्चर्य की बात है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय के पैरा 26 में यह उल्लेख किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी का गर्भपात हो गया था ।

42. प्राकृतिक गर्भपात और आशयित गर्भपात में भारी अंतर है । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा जो साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है वह प्राकृतिक गर्भपात से संबंधित है न कि आशयित गर्भपात से । स्थिति कुछ भी हो अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि प्राकृतिक गर्भपात की सूचना अपीलार्थी-पति को तत्काल दी गई थी । अगर यह आशयित गर्भपात था जैसाकि विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया है तब निश्चित रूप से प्रत्यर्थी-पत्नी ने इस बात से इनकार किया था कि उसके पति को पिता बनने की खुशी हुई थी और उसके माता-पिता भी नई संतान से वंचित हो गए थे । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा यह भी निष्कर्ष नहीं निकाला गया कि गर्भ-पात किए जाने से पूर्व अपीलार्थी-पति की जानकारी या सहमति आवश्यक थी । यदि यह प्राकृतिक गर्भपात का मामला था तब ऐसी स्थिति में भी अपीलार्थी-पति को जानकारी दी जानी चाहिए थी ।

43. विचलित किए जाने के लिए अभिलेख से एक यह पहलू उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी-पति के साथ रहने में इच्छुक नहीं थी और किसी भी प्रकार धनीय लाभ प्राप्त करना चाहती थी । उसके साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि अभिकथित प्राकृतिक गर्भपात से उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया था और इसीलिए उसने अपीलार्थी-पति से 10 दस लाख रुपए की मांग की थी । प्रत्यर्थी-पत्नी का तारीख 16 अक्तूबर, 2009 (प्रदर्श-एच) का नोटिस, जो अपीलार्थी-पति के काउंसेल को भेजा गया था, उपरोक्त बातों से मेल नहीं खाता है । उक्त नोटिस के उत्तर में प्रत्यर्थी-पत्नी ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया था कि वह अपीलार्थी-पति से विवाह-विच्छेद नहीं चाहती है और यदि अपीलार्थी-पति विवाह-विच्छेद चाहता है तब उसे विवाह-विच्छेद की डिक्री हेतु अपनी सहमति देने के लिए 10 लाख रुपए देने होंगे । प्रत्यर्थी-पत्नी का यह आपत्तिजनक आचरण पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा ध्यान नहीं दिया गया ।

44. इसके अन्यथा भी, प्रत्यर्थी-पत्नी और उसके पिता के साक्ष्य में घोर विरोधाभास दिखाई पड़ता है, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा उस पर भी विचार नहीं किया गया है ।

इन सब बातों के बावजूद विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने इस तथ्य को भी अनदेखा किया है कि अपीलार्थी-पति का परिसाक्ष्य उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान विचलित नहीं हुआ है । यह ऐसा मामला है जिसमें अपीलार्थी-पति के साक्ष्य के अनुसार साक्षियों की प्रतिपरीक्षा कई अवसरों पर नहीं कराई गई है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अनुचित निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं जो अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के साथ संगत नहीं है । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

45. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करते हुए हमारी राय में अपीलार्थी-पति ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने हेतु अपना पक्षकथन सफलतापूर्वक सिद्ध किया है ।

46. उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए हम निम्न आदेश पारित करते हैं :–

आदेश

2012 की कुटुंब न्यायालय अपील सं. 106 मंजूर की जाती है ।

(i) कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2012 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री अभिखंडित और अपास्त किए जाते हैं ।

(ii) 2010 की अर्जी सं. ए-22 लागत के साथ डिक्रीत की जाती है ।

(iii) तारीख 10 जुलाई, 2008 को अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच अनुष्ठापित विवाह, विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 27(1)(घ) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है ।

(iv) तद्नुसार डिक्री पारित की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

परियोजना निदेशक, राजस्थान सरकार, राजस्थान शहरी अवसंरचना विकास परियोजना

बनाम

मैसर्स इलेक्ट्रोस्टील कास्टिंग लिमिटेड कंपनी

(2020 की एकल याचिका सं. 13634)

तारीख 24 फरवरी, 2021

न्यायमूर्ति अशोक कुमार गौड़

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 151 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 13, 14 और 15] – याचियों द्वारा पुनर्विचार याचिका के माध्यम से चुनौती दिया जाना – अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन मध्यस्थ के रूप में न्यायमूर्ति श्री महेश चंद शर्मा (सेवानिवृत्त) को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाना – ब्याज की राशि का पुनर्निर्धारण किया जाना और साथ ही मध्यस्थ की फीस का भी बढ़ाया जाना – मध्यस्थ की फीस अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (14) के अधीन पुनर्निर्धारित की गई है और याची माध्यस्थम् की कार्यवाही में लगातार भाग लेते रहे हैं जिससे स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि याचियों ने निचले न्यायालय के समक्ष शुल्क के पुनर्निर्धारण सम्बन्धी एकल मध्यस्थ के आदेशों को चुनौती, मामले की सुनवाई के अंतिम चरण में दी है जो कि न्यायोचित नहीं है और उन्हें ऐसा करने से रोका जाता है ।

संक्षेप में, तथ्य यह है कि इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 2 अप्रैल, 2018 के अपने आदेश के माध्यम से न्यायमूर्ति श्री दिनेश चंद्र सोमानी (सेवानिवृत्त) को अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया । इसके बाद न्यायमूर्ति श्री दिनेश चंद्र सोमानी (सेवानिवृत्त) को तारीख 15 दिसंबर, 2018 के आदेश के माध्यम से खंड न्यायपीठ द्वारा एक मात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था । तारीख 15 दिसंबर, 2018 के आदेश को

याचियों द्वारा पुनर्विचार-याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई थी और इसे खंड न्यायपीठ ने 3 जनवरी, 2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था । दावेदार-प्रत्यर्थी ने एक मात्र मध्यस्थ के समक्ष दावा याचिका फाइल की, जिसमें दो प्रकार के दावों की मांग की गई थी अर्थात् (1) 1,05,45,760/- रुपए और (2) प्राप्ति तक 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 1,77,00,000/- रुपए । अधिनियम, 1996 की अनुसूची-IV के साथ पठित धारा 11 (14) के अनुसार, एकल मध्यस्थ ने तारीख 28 अप्रैल, 2019 के अपने आदेश द्वारा अपनी फीस 6,48,696/- रुपए निर्धारित की । एकल मध्यस्थ ने यह भी उल्लेख किया कि दावेदार ने दावा/माध्यस्थम् कार्यवाही के प्रारंभ का विवरण प्रस्तुत करने तक ब्याज की राशि निर्धारित नहीं की थी और पक्षकारों को ब्याज की राशि निर्धारित करने का निर्देश दिया गया था, जैसा कि दावा किया गया था और इसे सुनवाई की अगली तारीख को प्रस्तुत किया जाना था । एकल मध्यस्थ ने यह भी उल्लेख किया कि ब्याज की राशि का मात्राकरण किए जाने के बाद, माध्यस्थम् अधिकरण की फीस को तद्नुसार फिर से निर्धारित किया जाना चाहिए । इसके बाद, दावेदार द्वारा ब्याज की मात्रा निर्धारित करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया और दावा याचिका प्रस्तुत करने तक ब्याज के रूप में 11,17,00,000/- रुपए की राशि का दावा किया गया । एकल मध्यस्थ ने तारीख 9 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा फिर से शुल्क निर्धारित किया और अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) और उससे संलग्न अनुसूची - IV के अनुसार गणना करके 19,21,366/- रुपए फीस तय की । उक्त राशि का भुगतान एकल मध्यस्थ को नहीं किया गया था और इस प्रकार, एकल मध्यस्थ ने 26 सितम्बर, 2019, 16 अक्तूबर, 2019 और 30 अक्तूबर, 2019 की कार्यवाहियों के माध्यम से याचियों को माध्यस्थम् अधिकरण की फीस जमा करने के लिए समय दिया । एकल मध्यस्थ ने जब यह पाया कि शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है तो उसने 24 फरवरी, 2020 को आदेश पारित किया, जिसमें प्रभारी अधिकारी को निर्देश दिया गया कि वह माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के भुगतान के लिए की जा रही कार्यवाही के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण

मांगते हुए एक विस्तृत हलफनामा फाइल करे । तारीख 24 फरवरी, 2020 के आदेश को 6 मार्च, 2020 को एक समीक्षा याचिका फाइल करके चुनौती दी गई और इसे 22 मार्च, 2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । एकल मध्यस्थ ने, पुनर्विचार याचिका खारिज करने के बाद, माध्यस्थम् की कार्यवाही जारी रखी और अंतिम बहस के चरण तक पहुंच कर मामले को आंशिक रूप से सुना । एकल मध्यस्थ ने 18 अक्तूबर, 2020 को अंतिम बहस के लिए आदेश पारित किया और 7 नवम्बर, 2020 को अगली तारीख नियत की । याचियों ने उस स्तर पर, अधिनियम, 1996 की धारा 13, 14 और 15 के अधीन अवर न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया और याचियों की प्रस्तुतियों पर विचार करने और विधि के प्रासंगिक उपबंधों को ध्यान में रखने के बाद, नीचे के न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि याचियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन में कोई सार नहीं है और यह विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और तद्नुसार आवेदन खारिज कर दिया । निचले न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर दावेदार याची ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, निर्धारित किया जाने वाला प्रमुख मुद्दा यह है कि क्या एकल मध्यस्थ ने ब्याज की राशि के मात्राकरण की अनुमति देने में कोई अवैधता की है जिसकी गणना दावा याचिका फाइल करने के समय नहीं की गई थी, हालांकि राशि की प्राप्ति तक 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज का दावा किया गया था । आनुषंगिक मुद्दा माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के संबंध में भी है जिसमें मात्राकरण के बाद ब्याज के घटक को जोड़ा गया है कि क्या एकल मध्यस्थ अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) और अनुसूची-4 के अनुसार फिर से निर्धारित शुल्क मांगने के लिए सक्षम है । इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामले में दावेदार ने, दावे का विवरण फाइल करते समय, अपनी बैंक गारंटी को भुनाने और कटौती की गई राशि अर्थात् 1,05,45,760/- रुपए और 1.77 करोड़ रुपए (लगभग) की वापसी/धन वापसी के लिए तारीख 6 जून, 2007 के आदेश को 18

प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ रद्द करने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की थी । इस न्यायालय ने पाया कि यदि दावे की याचिका में ब्याज का दावा एक विशेष प्रतिशत पर किया गया था, अर्थात् वर्तमान मामले में इसकी प्राप्ति तक 18% प्रति वर्ष थी तो दावेदार ब्याज की राशि को निर्धारित करने के अपने अधिकार की परिधि में था और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि ब्याज की राशि दावेदार की ओर से एक अतिरंजित दावा है या यह दावे की परिधि के परे है जो दावेदार द्वारा फाइल किया गया है । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि पक्षकारों के काउंसेल की सुनवाई करते समय, माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के निर्धारण के लिए, एकल मध्यस्थ ने विशेष रूप से कहा था कि दावा की गई राशि पर, अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) के अनुसार फीस का भुगतान किया जाना था, जिसे अनुसूची-IV के साथ पढ़ा जाए । एकल मध्यस्थ ने आगे यह स्पष्ट किया था कि ब्याज की राशि के मात्राकरण के बाद, माध्यस्थम् अधिकरण की फीस को तद्नुसार फिर से निर्धारित किया जाना था । याचियों के विद्वान् काउंसेल का प्रस्तुत किया गया कि अतिरंजित दावा, जो मूल दावे की तुलना में लगभग पांच गुना अधिक है, दावे की याचिका में दावा की गई राशि से अधिक है, इसे अतिरंजित दावे के रूप में माना जाना चाहिए, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि ब्याज या विशेष दावे का पंचाट, देय है या देय नहीं, यह माध्यस्थम् की कार्यवाही पूरी होने के बाद एकल मध्यस्थ द्वारा पारित किए जाने वाले पंचाट पर अंतत: निर्भर करेगा । न्यायालय की यह भी राय है कि यदि किसी विशेष राशि/दावे पर ब्याज के विरुद्ध किसी राशि का दावा किया जाता है या यदि कार्यवाही के किसी भी पक्ष द्वारा कोई प्रतिदावा फाइल किया जाता है, तो इसका परिणाम संबंधित पक्ष को राशि का दावा करने से वंचित नहीं कर सकता है । याचियों के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि एकल मध्यस्थ की नियुक्ति के बाद, जिस प्रकार कार्यवाही आयोजित की गई थी और प्रभारी अधिकारी से हलफनामा मांगा गया था, वह एकल मध्यस्थ की स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर न्यायोचित संदेह पैदा करने के बराबर है और इस

प्रकार, अधिनियम, 1996 की धारा 13 के अनुसार, एकल मध्यस्थ को मामले में आगे कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि याची का आरोप पूरी तरह से आधारहीन और गलत है । 1996 के अधिनियम के उपबंधों का अनुसरण करते हुए, माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा शुल्क के निर्धारण को एकल मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए चुनौती के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही उसकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर कोई संदेह किया जा सकता है । याचियों के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि अधिनियम, 1996 की धारा 39 के अधीन, माध्यस्थम् अधिकरण को माध्यस्थम् के किसी भी अवैतनिक लागत के लिए माध्यस्थम् पंचाट पर धारणाधिकार रखने की शक्ति है और इस प्रकार, एकल मध्यस्थ अत्यधिक शुल्क वसूल करने का कोई आग्रह नहीं किया जाना चाहिए । ब्याज की राशि की मात्रा के परिमाणन के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि दावे के अनुसार, मध्यस्थ की फीस का निर्धारण, अधिनियम, 1996 के साथ संलग्न धारा 11 की उपधारा (14) के अंतर्गत होना चाहिए और मध्यस्थ की ऐसी फीस को माध्यस्थम् की अवैतनिक लागत नहीं माना जा सकता जिसका मध्यस्थ पंचाट पर कोई धारणाधिकार होना चाहिए । इस न्यायालय का यह भी मत है कि याचियों ने तारीख 28 अप्रैल, 2019 को पारित उस प्रारंभिक आदेश के बाद कई चरणों में एकल मध्यस्थ के समक्ष माध्यस्थम् की कार्यवाही में भाग लिया है, जिसके अनुसार की ब्याज और माध्यस्थम् अधिकरण शुल्क की राशि के मात्राकरण के पुनर्निर्धारण की अनुमति दी गई है । माध्यस्थम् की कार्यवाही में लगातार भाग लेने सम्बन्धी याचियों के आचरण से स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि जब मामले की अंतिम चरण में सुनवाई की गई है तब उन्होंने निचले न्यायालय के समक्ष एकल मध्यस्थ के आदेशों को चुनौती दी । चूंकि याचियों ने माध्यस्थम् कार्यवाहियों में भाग लिया है, इसलिए उन्हें माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के पुनर्निर्धारण से संबंधित एकल मध्यस्थ के आदेश को चुनौती देने से रोका जाता है । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि याची का यह आचरण कि उन्होंने

माध्यस्थम् की कार्यवाही में भाग लिया है, उन्हें एकल मध्यस्थ द्वारा तत्पश्चात् पारित आदेश को चुनौती देने से रोकता है । (पैरा 13, 14, 15, 16, 17, 18, 21 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	ए. आई. आर. 2019 राजस्थान 54 : **दोषियन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड** ;	9ग, 24
[2019]	2019 (5) ए. आर. बी. एल. आर. 235 (एस. सी.) : **भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण** बनाम **गायत्री झांसी रोडवेज लिमिटेड** ;	23
[2019]	ओ. एम. पी. (टी.) कॉम 54/2019 और आई. ए. एस. 8116-8117/2019 : **जी. एस. डेवलपमेंट एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **अल्फा कॉर्प डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** ।	19

सिविल रिट अधिकारिता : 2020 की एकल याचिका सं. 13634.

याचियों की ओर से डा. पी. सी. जैन, काउंसेल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अंगद मिर्धा, काउंसेल

भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

न्यायमूर्ति अशोक कुमार गौड़ – वाणिज्यिक न्यायालय सं. 1, जयपुर महानगर-11 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "निचला न्यायालय" कहा गया है) द्वारा पारित तारीख 31 अक्तूबर, 2020 के उस आदेश को चुनौती देते हुए याचियों द्वारा तत्काल रिट याचिका फाइल की गई है जिसके द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम, 1996" कहा गया है) की धारा 13, 14 और 15 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया है ।

2. संक्षेप में, तथ्य यह है कि इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 2 अप्रैल, 2018 के अपने आदेश के माध्यम से न्यायमूर्ति श्री दिनेश चंद्र सोमानी (सेवानिवृत्त) को अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया । इसके बाद न्यायमूर्ति श्री दिनेश चंद्र सोमानी (सेवानिवृत्त) को तारीख 15 दिसंबर, 2018 के आदेश के माध्यम से खंड न्यायपीठ द्वारा एक मात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था । तारीख 15 दिसंबर, 2018 के आदेश को याचियों द्वारा पुनर्विचार-याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई थी और इसे खंड न्यायपीठ ने 3 जनवरी, 2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था ।

3. दावेदार-प्रत्यर्थी ने एक मात्र मध्यस्थ के समक्ष दावा याचिका फाइल की, जिसमें दो प्रकार के दावों की मांग की गई थी अर्थात् (1) 1,05,45,760/- रुपए और (2) प्राप्ति तक 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 1,77,00,000/- रुपए ।

4. अधिनियम, 1996 की अनुसूची-IV के साथ पठित धारा 11 (14) के अनुसार, एकल मध्यस्थ ने तारीख 28 अप्रैल, 2019 के अपने आदेश द्वारा अपनी फीस 6,48,696/- रुपए निर्धारित की । एकल मध्यस्थ ने यह भी उल्लेख किया कि दावेदार ने दावा/माध्यस्थम् कार्यवाही के प्रारंभ का विवरण प्रस्तुत करने तक ब्याज की राशि निर्धारित नहीं की थी और पक्षकारों को ब्याज की राशि निर्धारित करने का निर्देश दिया गया था, जैसा कि दावा किया गया था और इसे सुनवाई की अगली तारीख को प्रस्तुत किया जाना था । एकल मध्यस्थ ने यह भी उल्लेख किया कि ब्याज की राशि का मात्राकरण किए जाने के बाद, माध्यस्थम् अधिकरण की फीस को तद्नुसार फिर से निर्धारित किया जाना चाहिए ।

5. इसके बाद, दावेदार द्वारा ब्याज की मात्रा निर्धारित करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया और दावा याचिका प्रस्तुत करने तक ब्याज के रूप में 11,17,00,000/- रुपए की राशि का दावा किया गया । एकल मध्यस्थ ने तारीख 9 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा फिर से शुल्क निर्धारित किया और 1996 के अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (14) और उससे संलग्न अनुसूची - IV के अनुसार गणना करके

19,21,366/- रुपए फीस तय की । उक्त राशि का भुगतान एकल मध्यस्थ को नहीं किया गया था और इस प्रकार, एकल मध्यस्थ ने 26 सितम्बर, 2019, 16 अक्तूबर, 2019 और 30 अक्तूबर, 2019 की कार्यवाहियों के माध्यम से याचियों को माध्यस्थम् अधिकरण की फीस जमा करने के लिए समय दिया ।

6. एकल मध्यस्थ ने जब यह पाया कि शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है तो उसने 24 फरवरी, 2020 को आदेश पारित किया, जिसमें प्रभारी अधिकारी को निर्देश दिया गया कि वह माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के भुगतान के लिए की जा रही कार्यवाही के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण मांगते हुए एक विस्तृत हलफनामा फाइल करे । तारीख 24 फरवरी, 2020 के आदेश को 6 मार्च, 2020 को एक समीक्षा याचिका फाइल करके चुनौती दी गई और इसे 22 मार्च, 2020 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया ।

7. एकल मध्यस्थ ने, पुनर्विचार याचिका खारिज करने के बाद, माध्यस्थम् की कार्यवाही जारी रखी और अंतिम बहस के चरण तक पहुंच कर मामले को आंशिक रूप से सुना । एकल मध्यस्थ ने 18 अक्तूबर, 2020 को अंतिम बहस के लिए आदेश पारित किया और 7 नवम्बर, 2020 को अगली तारीख नियत की ।

8. याचियों ने उस स्तर पर, अधिनियम, 1996 की धारा 13, 14 और 15 के अधीन अवर न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया और याचियों की प्रस्तुतियों पर विचार करने और विधि के प्रासंगिक उपबंधों को ध्यान में रखने के बाद, नीचे के न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि याचियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन में कोई सार नहीं है और यह विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और तद्नुसार आवेदन खारिज कर दिया ।

9. याचियों के विद्वान् काउंसेल डॉ. पी. सी. जैन ने निम्नलिखित निवेदन किए हैं –

9क. निचले न्यायालय ने अधिनियम, 1996 की धारा 38 और 39 में निहित उपबंधों के आलोक में याचियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन पर विचार नहीं किया है ।

9ख. निचले न्यायालय ने अधिनियम, 1996 की धारा 13, 14 और 15 के अधीन फाइल किए गए आवेदन की परिधि पर विचार नहीं किया है और केवल माध्यस्थम् को समाप्त करने के आदेश के बारे में विचार किया गया था ।

9ग. **दोषियन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित विधि में निहित विधिक मुद्दे को देखे बिना कोई विचार और भेद नहीं किया गया ।

9घ. निचला न्यायालय अधिनियम, 1996 की धारा 13 की उपधारा (2) पर विचार करने में विफल रहा है क्योंकि प्रभारी अधिकारी के हलफनामे की मांग कर फीस के भुगतान पर जोर देने के लिए माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया विधि की दृष्टि से ठीक नहीं थी ।

9ङ एकल मध्यस्थ द्वारा प्रभारी अधिकारी का बयान दर्ज करने और उससे स्पष्टीकरण मांगने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया कुछ भी नहीं बल्कि क्षेत्राधिकार का अतिचार है, जो उसमें निहित नहीं है ।

9च. ब्याज घटक का संशोधन करते हुए बढ़ा-चढ़ाकर किया गया दावा एकल मध्यस्थ द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता था और अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) के यथा संशोधित उपबंधों के साथ सपठित अनुसूची-IV का अवलंब लेते हुए, दावा याचिका में दिए गए मूल राशि से बहुत अधिक ब्याज के इस प्रकार के दावे शुल्क प्रभारित करने की विषयवस्तु नहीं बन सकते ।

10. इसके विपरीत प्रत्यर्थी के काउंसेल श्री अंगद मिर्धा ने निम्नलिखित निवेदन किए हैं –

10क. निचले न्यायालय ने एकल मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के लिए याचियों द्वारा फाइल सारहीन आवेदन खारिज करके ठीक ही किया है ।

10ख. दावा याचिका में, दावेदार ने राशि की वसूली तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ दावे के दो सेट मांगे थे । ब्याज की राशि

---

[1] ए. आई. आर. 2019 राजस्थान 54.

की मात्रा केवल एक अंकगणितीय प्रक्रिया थी, जिसे 28 अप्रैल, 2019 को एकल मध्यस्थ द्वारा अनुमति दी गई थी और शुल्क को माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा फिर से निर्धारित किया जाना था ।

10ग. दावेदार ने अपने दावे में कोई अतिशयोक्ति नहीं की है और ब्याज की राशि का मात्राकरण दावे का हिस्सा है और एकल मध्यस्थ दावेदार के हित की पात्रता का विनिश्चय अपनी क्षमता के भीतर ही किया है ।

10घ. याचियों के आचरण से पता चलता है कि विभिन्न तारीखों पर वे पुनर्निर्धारित शुल्क का भुगतान करने के लिए सहमत हुए थे और कई अवसरों पर उन्होंने उसी का भुगतान करने के लिए समय मांगा और बाद में, जब शुल्क का भुगतान नहीं किया गया और एकल मध्यस्थ ने प्रभारी अधिकारी द्वारा एक हलफनामा प्रस्तुत करने के लिए कहा तो याचियों को उनके द्वारा लिए गए फैसले से फिर जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और वे एकल मध्यस्थ द्वारा पुनर्निर्धारित किए गए शुल्क का भुगतान करने के लिए बाध्य हैं जिसके लिए वे पहले ही स्वीकृति दे चुके थे ।

10ङ याचियों द्वारा फाइल की गई वर्तमान याचिका और निचले न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एकल मध्यस्थ ने पक्षकारों को पर्याप्त अवसर प्रदान करने के बाद माध्यस्थम् की कार्यवाही जारी रखी और मामला अंतिम बहस के चरण तक आ गया है और इस प्रकार, याचियों को अब एकल मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही को रोकने की अनुमति नहीं दी जा सकती है ।

11. मैंने पक्षकारों के काउंसेलों के परस्पर विरोधी तर्क सुने हैं और उनकी सहायता से रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है ।

12. अधिनियम, 1996 की धारा 11(14), 13, 14, 15, 31क, 38 और 39 को तत्काल निर्देश के लिए उद्धृत करना उपयुक्त होगा :–

> 11(14). मध्यस्थ संस्था माध्यस्थम् अधिकरण की फीस और माध्यस्थम् को इसके भुगतान के तरीके को चौथी अनुसूची में निर्दिष्ट दरों के अधीन निर्धारित करेगी ।

13. **चुनौती प्रक्रिया** – (1) उपधारा (4) के अधीन रहते हुए, पक्षकार किसी मध्यस्थ को चुनौती देने की प्रक्रिया पर सहमत होने के लिए स्वंतत्र हैं ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी भी करार को विफल करने पर, एक पक्ष जो मध्यस्थ को चुनौती देने का इरादा रखता है, पंद्रह दिनों के भीतर माध्यस्थम् अधिकरण के संविधान के बारे में अवगत होने के बाद या धारा 12 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी भी परिस्थिति से अवगत होने के बाद, माध्यस्थम् अधिकरण को चुनौती के कारणों का लिखित विवरण भेजें ।

(3) जब तक मध्यस्थ, जिसे उपधारा (2) के अधीन चुनौती दी गई है, अपने कार्यालय से हट नहीं जाता है या अन्य पक्ष चुनौती के लिए सहमत हैं, तो माध्यस्थम् अधिकरण चुनौती पर फैसला करेगा ।

(4) यदि कोई चुनौती, किसी भी प्रक्रिया के तहत, पक्षकारों द्वारा स्वीकार की जाती है या प्रक्रिया के अधीन, उपधारा (2) के अधीन, सफल नहीं होती है, माध्यस्थम् अधिकरण माध्यस्थम् की कार्यवाही जारी रखेगा और एक मध्यस्थ निर्णय देगा ।

(5) जहां उपधारा (4) के अधीन माध्यस्थम् पंचाट दिया जाता है, वहां मध्यस्थ को चुनौती देने वाला पक्षकार धारा 34 के अनुसार ऐसे माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकता है ।

(6) जहां उपधारा (5) के अधीन किए गए आवेदन पर किसी माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किया जाता है, वहां न्यायालय यह विनिश्चय कर सकेगा कि क्या चुनौती दिए गए मध्यस्थ किसी फीस के हकदार हैं ।

14. **कार्य करने में असफलता या असंभवता** – (1) किसी मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाएगा और उसके स्थान पर किसी अन्य मध्यस्थ को प्रतिस्थापित किया जाएगा, यदि –

(क) वह न्यायसंगत हो जाता है या वस्तुत: अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो जाता है या अन्य कारणों से बिना असम्यक् विलंब किए कार्य करने में विफल रहता है, और

(ख) वह अपने पद से हट जाता है या पक्षकार उसके अधिदेश की समाप्ति के लिए सहमत हो जाते हैं ।

(2) यदि उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी आधार के संबंध में कोई विवाद बना रहता है तो कोई पक्षकार, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति न हो, अधिदेश की समाप्ति पर विनिश्चय करने के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकेगा ।

(3) यदि, इस धारा या धारा 13 की उपधारा (3) के अधीन, कोई मध्यस्थ अपने पद से हट जाता है या कोई पक्षकार किसी मध्यस्थ के अधिदेश की समाप्ति के लिए सहमत हो जाता है, तो इसका अर्थ इस धारा या धारा 12 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी आधार की विधिमान्यता को स्वीकार करना नहीं होगा ।

15. **आदेश की समाप्ति और मध्यस्थ का प्रतिस्थापना** – (1) धारा 13 या धारा 14 में उल्लिखित परिस्थितियों के अलावा, एक मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाएगा –

(क) जहां वह किसी कारण से अपने पद से हट जाता है, या

(ख) पक्षकारों के करार द्वारा या उसके अनुसरण में ।

(2) जहां मध्यस्थ का अधिदेश समाप्त हो जाता है, वहां स्थानापन्न मध्यस्थ की नियुक्ति उन नियमों के अनुसार की जाएगी जो मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए लागू थे ।

(3) जब तक पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति नहीं हो जाती, जहां एक मध्यस्थ को उपधारा (2) के अधीन प्रतिस्थापित किया

जाता है, पहले की गई किसी भी सुनवाई को माध्यस्थम् अधिकरण के विवेक पर दोहराया जा सकता है ।

(4) जब तक पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति नहीं हो जाती, इस धारा के अधीन किसी माध्यस्थम् अधिकरण के प्रतिस्थापन के पूर्व किया गया माध्यस्थम् अधिकरण का कोई आदेश या निर्णय केवल इसलिए अविधिमान्य नहीं होगा क्योंकि माध्यस्थम् अधिकरण की संरचना में परिवर्तन हुआ है ।

31A. लागत के लिए व्यवस्था – (1) माध्यस्थम् से संबंधित इस अधिनियम के किसी भी उपबंध के अधीन किसी भी माध्यस्थम् कार्यवाही या कार्यवाही के संबंध में, न्यायालय या मध्यस्थ अधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में निहित किसी बात के होते हए भी, निर्धारित करने का विवेक होगा ।

(क) क्या लागत एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को देय है.

(ख) ऐसी लागत की रकम, और

(ग) जब ऐसे खर्चों का भुगतान किया जाना है ।

व्याख्या – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, लागत का अर्थ उचित लागत से संबंधित हैं –

(i) मध्यस्थों, न्यायालयों और साक्षियों की फीस और खर्च,

(ii) विधिक फीस और व्यय,

(iii) माध्यस्थम् प्रक्रिया का पर्यवेक्षण करने वाली संस्था की कोई प्रशासनिक फीस, और

(iv) माध्यस्थम् या न्यायालय कार्यवाहियों और माध्यस्थम् पंचाट के संबंध में उपगत कोई अन्य व्यय ।

(2) यदि न्यायालय या मध्यस्थ अधिकरण लागतों के भुगतान के संबंध में आदेश देने का निर्णय करता है, –

(क) सामान्य नियम यह है कि असफल पक्षकार को सफल पक्षकार के खर्चे का भुगतान करने का आदेश दिया जाएगा, या

(ख) न्यायालय या मध्यस्थ अधिकरण लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए एक अलग आदेश दे सकता हैं ।

(3) लागतों का निर्धारण करने में, न्यायालय या मध्यस्थ अधिकरण को सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा, जिनमें शामिल हैं –

(क) सभी पक्षकारों का आचरण

(ख) क्या कोई पक्षकार मामले में आंशिक रूप से सफल हुआ है

(ग) क्या पक्षकार ने तुच्छ प्रतिदावा किया था जिसके कारण माध्यस्थम् कार्यवाहियों के निपटान में विलंब हुआ था, और

(घ) क्या किसी पक्षकार द्वारा विवाद को निपटाने के लिए कोई तर्कसंगत प्रस्ताव किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा इंकार किया गया है,

(4) न्यायालय या मध्यस्थ अधिकरण इस खंड के अधीन कोई भी आदेश दे सकता है जिसमें वह आदेश भी शामिल है जो एक पक्ष भुगतान करेगा –

(क) दूसरे पक्षकार की लागत का अनुपात ;

(ख) अन्य पक्षकार के खर्चे के संबंध में वर्णित रकम ;

(ग) केवल एक निश्चित तिथि से या तब तक की लागत ;

(घ) कार्यवाहियां आरंभ होने से पूर्व उपगत लागत ;

(ङ) कार्यवाहियों में उठाए गए विशिष्ट कदमों से संबंधित लागत ;

(च) कार्यवाहियों के केवल सुभिन्न भाग से संबंधित खर्चा, और

(छ) किसी निश्चित तारीख से या तक लागत पर ब्याज ।

(5) एक करार जिसका प्रभाव यह है कि एक पक्ष को किसी भी घटना में माध्यस्थम् की पूरी या आंशिक लागत का भुगतान करना है, केवल तभी मान्य होगा जब इस प्रकार का करार प्रश्नगत विवाद के उद्भूत होने के बाद किया गया हो ।

धारा 38. **जमा** – (1) मध्यस्थ न्यायधिकरण धारा 31 की उपधारा (8) में निर्दिष्ट लागतों के लिए अग्रिम के रूप में जमा या पूरक जमा की राशि, जैसा भी मामला हो, तय कर सकता है, जिसे प्रस्तुत किए गए दावे के संबंध में वह व्यय किए जाने की अपेक्षा करता है :

बशर्ते कि जहां, दावे के अलावा, एक प्रतिदावा मध्यस्थ अधिकरण को प्रस्तुत किया गया हो, वह दावे और प्रतिदावे के लिए जमा की अलग राशि तय कर सकता है ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट जमा राशि पक्षकारों द्वारा समान हिस्सों में देय होगी :

बशर्ते कि जहां एक पक्ष जमा के अपने हिस्से का भुगतान करने में विफल रहता है, तो दूसरा पक्ष उस हिस्से का भुगतान कर सकता है :

बशर्ते कि जहां अन्य पक्ष भी दावों प्रति-दावे के संबंध में पूर्वोक्त हिस्से का भुगतान नहीं करता है,

मध्यस्थ अधिकरण इस प्रकार के दावे या प्रतिदावे के संबंध में माध्यस्थम् की कार्यवाही को निलंबित या समाप्त कर सकता है, जैसा भी मामला हो.

(3) माध्यस्थम् की कार्यवाही समाप्त होने पर, मध्यस्थ अधिकरण प्राप्त जमा राशियों के पक्षकारों को लेखा प्रदान करेगा

और किसी भी अव्ययित शेष को पार्टी या पक्षकारों को वापस कर देगा, जैसा भी मामला हो ।

धारा 39. **माध्यस्थम् पंचाट और लागत के बारे में निक्षेपों पर धारणाधिकार** – (1) उपधारा (2) के उपबंधों और माध्यस्थम् करार में इसके विपरीत किसी उपबंध के अधीन रहते हुए, मध्यस्थ अधिकरण के पास माध्यस्थम् की किसी भी अवैतनिक लागत के लिए माध्यस्थम् पंचाट पर एक धारणाधिकार होगा ।

(2) यदि किसी मामले में कोई माध्यस्थम् अधिकरण अपने द्वारा मांगे गए खर्चे के भुगतान के सिवाय अपना पंचाट देने से इंकार करता है, तो न्यायालय, इस संबंध में एक आवेदन पर, यह आदेश दे सकता है कि माध्यस्थम् अधिकरण मांग किए गए खर्चे का आवेदक द्वारा न्यायालय में भुगतान करने पर आवेदक द्वारा न्यायालय में भुगतान करने पर आवेदक को माध्यस्थम् पंचाट देगा और ऐसी जांच के बाद, यदि कोई हो, जैसा वह उचित समझे, आगे आदेश देगा कि माध्यस्थम् अधिकरण को इस प्रकार भुगतान किए गए धन में से लागत के रूप में ऐसी राशि का भुगतान किया जाएगा, जिसे न्यायालय उचित समझे और यह कि शेष राशि, यदि कोई हो, तो आवेदक को वापस कर दी जाएगी ।

(3) उपधारा (2) के अधीन आवेदन किसी पक्षकार द्वारा तब तक किया जा सकता है जब तक उसके और माध्यस्थम् अधिकरण के मध्य लिखित करार द्वारा मांगी गई फीस नियत नहीं की जाती है और माध्यस्थम् अधिकरण ऐसे किसी आवेदन पर उपस्थित होने और सुनने का हकदार होगा ।

(4) न्यायालय माध्यस्थम् के खर्चों के संबंध में ऐसे आदेश कर सकता है जो वह ठीक समझे जहां ऐसे खर्चों के संबंध में कोई प्रश्न उद्भूत होता है और माध्यस्थम् पंचाट में उनके संबंध में कोई पर्याप्त उपबंध नहीं है ।

13. वर्तमान मामले में, निर्धारित किया जाने वाला प्रमुख मुद्दा

यह है कि क्या एकल मध्यस्थ ने ब्याज की राशि के मात्राकरण की अनुमति देने में कोई अवैधता की है जिसकी गणना दावा याचिका फाइल करने के समय नहीं की गई थी, हालांकि राशि की प्राप्ति तक 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज का दावा किया गया था । आनुषंगिक मुद्दा माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के संबंध में भी है जिसमें मात्राकरण के बाद ब्याज के घटक को जोड़ा गया है कि क्या एकल मध्यस्थ अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) और अनुसूची-4 के अनुसार फिर से निर्धारित शुल्क मांगने के लिए सक्षम है ।

14. इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामले में दावेदार ने, दावे का विवरण फाइल करते समय, अपनी बैंक गारंटी को भुनाने और कटौती की गई राशि अर्थात् 1,05,45,760/- रुपए और 1.77 करोड़ रुपए (लगभग) की वापसी/धन वापसी के लिए तारीख 6 जून 2007 के आदेश को 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ रद्द करने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की थी ।

15. इस न्यायालय ने पाया कि यदि दावे की याचिका में ब्याज का दावा एक विशेष प्रतिशत पर किया गया था, अर्थात् वर्तमान मामले में इसकी प्राप्ति तक 18% प्रतिवर्ष थी तो दावेदार ब्याज की राशि को निर्धारित करने के अपने अधिकार की परिधि में था और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि ब्याज की राशि दावेदार की ओर से एक अतिरंजित दावा है या यह दावे की परिधि के परे है जो दावेदार द्वारा फाइल किया गया है ।

16. इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि पक्षकारों के काउंसेल की सुनवाई करते समय, माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के निर्धारण के लिए, एकल मध्यस्थ ने विशेष रूप से कहा था कि दावा की गई राशि पर, अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) के अनुसार फीस का भुगतान किया जाना था, जिसे अनुसूची -IV के साथ पढ़ा जाए । एकल मध्यस्थ ने आगे यह स्पष्ट किया था कि ब्याज की राशि के मात्राकरण के बाद, माध्यस्थम् अधिकरण की फीस को तद्नुसार फिर से निर्धारित किया जाना था ।

17. याचियों के विद्वान् काउंसेल का प्रस्तुत किया गया कि अतिरंजित दावा, जो मूल दावे की तुलना में लगभग पांच गुना अधिक है, दावे की याचिका में दावा की गई राशि से अधिक है, इसे अतिरंजित दावे के रूप में माना जाना चाहिए, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि ब्याज या विशेष दावे का पंचाट, देय है या देय नहीं, यह माध्यस्थम् की कार्यवाही पूरी होने के बाद एकल मध्यस्थ द्वारा पारित किए जाने वाले पंचाट पर अंतत: निर्भर करेगा । न्यायालय की यह भी राय है कि यदि किसी विशेष राशि/दावे पर ब्याज के विरुद्ध किसी राशि का दावा किया जाता है या यदि कार्यवाही के किसी भी पक्ष द्वारा कोई प्रतिदावा फाइल किया जाता है, तो इसका परिणाम संबंधित पक्ष को राशि का दावा करने से वंचित नहीं कर सकता है ।

18. याचियों के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि एकल मध्यस्थ की नियुक्ति के बाद, जिस प्रकार कार्यवाही आयोजित की गई थी और प्रभारी अधिकारी से हलफनामा मांगा गया था, वह एकल मध्यस्थ की स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर न्यायोचित संदेह पैदा करने के बराबर है और इस प्रकार, अधिनियम, 1996 की धारा 13 के अनुसार, एकल मध्यस्थ को मामले में आगे कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि याची का आरोप पूरी तरह से आधारहीन और गलत है । 1996 के अधिनियम के उपबंधों का अनुसरण करते हुए, माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा शुल्क के निर्धारण को एकल मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए चुनौती के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही उसकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर कोई संदेह किया जा सकता है ।

19. माध्यस्थम् की कार्यवाही के दौरान मध्यस्थ द्वारा शुल्क के निर्धारण का मुद्दा और मामला अंतिम बहस के चरण तक पहुंचने के बाद अधिनियम, 1996 की धारा 14 और 16 के अधीन एक आवेदन फाइल करके मध्यस्थ की ऐसी कार्रवाई को चुनौती दिए जाने के प्रश्न पर दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **जी. एस. डेवलपमेंट एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट**

लिमिटेड बनाम **अल्फा कॉर्प डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य**[1] (तारीख 29 मई, 2019) वाले मामले में विचार किया गया है ।

20. दिल्ली उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि मध्यस्थ अपनी फीस नियुक्त करता है तो अधिनियम, 1996 की धारा 13 के अधीन फाइल किए गए पक्षपात के आवेदन को स्वीकार नहीं किया जा सकता और एकल उपाय यह है कि अंतिम पंचाट की प्रतीक्षा की जाए और उसे चुनौती दी जाए और इस प्रकार, अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन आवेदन को चलने योग्य अभिनिर्धारित नहीं किया गया है । **जी.एस. डेवलपमेंट एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय के प्रासंगिक पैरा संख्या 18 और 19 को तत्काल संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है :–

> 18. उपरोक्त आदेश द्वारा, मध्यस्थ ने घटनाक्रम और माध्यस्थम् के समक्ष कार्यवाही की रीति विशेषकर शुल्क के निर्धारण के संबंधित रीति को अभिलिखित किया है । मध्यस्थ ने याची द्वारा अधिनियम की धारा 13 (2) के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज करते हुए, कथित आदेश के पैराग्राफ 58 में शुल्क के संबंध में निम्नलिखित निर्देश पारित किए हैं –
>
> > 58. हालांकि, न्याय के हित में प्रतिवादी 28 मार्च, 2019 के आवेदन की प्रार्थना पर दलील नहीं दी है, अधिकरण अब इस मामले की फीस संरचना में संशोधन करता है जैसा कि तारीख 12 मई, 2017 के आदेश को चौथी अनुसूची में रखा गया है । अधिकरण अब दावों के लिए 37.50 लाख रुपए और प्रतिदावे के लिए 37.50 लाख रुपए का प्रभार वसूल करेगा, जिसे पक्षकारों के बीच समान रूप से साझा किया जाएगा । प्रत्यर्थी दावों के साथ-साथ प्रतिदावों के लिए आदेश की प्राप्ति के 10 दिनों के भीतर चौथी अनुसूची के अनुसार भुगतान कर सकता है । यदि प्रतिवादी दावों और प्रतिदावों के

[1] ओ. एम. पी. (टी.) कॉम 54/2019 और आईएएस 8116-8117/2019.

लिए शुल्क के अपने हिस्से का भुगतान करने में विफल रहता है, तो उसके बाद दावेदार 10 दिनों के भीतर दावे के साथ-साथ प्रतिदावे के शुल्क का भुगतान प्रतिवादी के हिस्से के रूप में कर सकते हैं । अधिकरण को इस तथ्य का ध्यान है कि दावेदार ने प्रतिदावे के लिए शुल्क में प्रत्यर्थी के हिस्से का भुगतान करने से इनकार कर दिया था, लेकिन ऐसा 12 मई 2017 के आदेश में दिए गए शुल्क ढांचे की पृष्ठभूमि में किया गया था, यदि दावेदार इस प्रकार के भुगतान नहीं करते हैं, तो मामला दावों पर प्रतिवादी की दलीलों के साथ-साथ प्रतिदावों और उसके बाद प्रत्युत्तर तर्कों के लिए अग्रेषित किया जाएगा और माध्यस्थम् सम्बन्धी बकाया राशि को विधि के अनुसार पंचाट दिए जाने के चरण में निपटाया जाएगा । 18 दिसंबर 2017 और 17 जनवरी 2019 को अधिकरण द्वारा जारी किए गए शुल्क ज्ञापन वापस ले लिए गए हैं ।

19. ऐसा हो सकता है कि यदि पक्षपात का आरोप अधिनियम की धारा 13 के अधीन लगाया जाता है तो याची का उपचार केवल पंचाट की प्रतीक्षा करना है और उसके बाद, यदि उसे सलाह दी जाती है तो वह उसे चुनौती दे सकता है और साथ ही अंतिम पंचाट को भी चुनौती दे सकता है । याची अधिनियम की धारा 14 के अधीन आवेदन फाइल नहीं कर सकता है ।"

21. याचियों के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि अधिनियम, 1996 की धारा 39 के अधीन, माध्यस्थम् अधिकरण को माध्यस्थम् के किसी भी अवैतनिक लागत के लिए माध्यस्थम् पंचाट पर धारणाधिकार रखने की शक्ति है और इस प्रकार, एकल मध्यस्थ अत्यधिक शुल्क वसूल करने का कोई आग्रह नहीं किया जाना चाहिए । ब्याज की राशि की मात्रा के परिमाणन के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि दावे के अनुसार, मध्यस्थ की फीस का निर्धारण, अधिनियम, 1996 के साथ संलग्न धारा 11 की उपधारा (14) के अंतर्गत होना चाहिए और मध्यस्थ

की ऐसी फीस को माध्यस्थम् की अवैतनिक लागत नहीं माना जा सकता जिसका मध्यस्थ पंचाट पर कोई धारणाधिकार होना चाहिए ।

22. याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि माध्यस्थम् अधिकरण को अधिनियम, 1996 की धारा 31क के अनुसार लागत निर्धारित करने की शक्ति है और माध्यस्थम् अधिकरण जमा राशियों से संबंधित अधिनियम, 1996 की धारा 38 में निहित उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, धारा 31 की उपधारा (8) में निर्दिष्ट लागत के लिए अग्रिम के रूप में जमा या अनुपूरक जमा की राशि तय कर सकता है, इस न्यायालय ने पाया कि जहां तक अधिनियम, 1996 की धारा 38 के लागू होने का संबंध है, मामले के वर्तमान तथ्यों में इसे लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि माध्यस्थम् की लागत का निर्णय अधिनियम, 1996 की धारा 31क के अधीन उपबंधित विभिन्न मापदंडों को ध्यान में रखने के बाद एकल मध्यस्थ द्वारा किया जा सकता है । शुल्क का भुगतान किए जाने को अधिनियम, 1996 की धारा 31क के अधीन लागत के लिए व्यवस्था के दायरे में नहीं लाया जा सकता है ।

23. **भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण** बनाम **गायत्री झांसी रोडवेज लिमिटेड**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने से सम्बंधित मुद्दे पर विचार किया । उक्त निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम, 1996 की धारा 31क के साथ पठित धारा 31(8) की परिधि पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ की फीस भुगतान किए जाने वाले खर्च में जोड़ी जा सकती है, लेकिन उसके बाद यह कहना बहुत दूर की बात होगी कि अधिनियम, 1996 की धारा 31(8) और धारा 31क सीधे संविदाओं को लागू होगी जिसमें एक शुल्क संरचना पहले से ही निर्धारित की जा चुकी है । उच्चतम न्यायालय ने यह भी पाया कि **भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण** (उपरोक्त) के मामले में अधिकथित विधि का दृष्टिकोण भी सही नहीं है । उक्त

[1] 2019 (5) ए. आर. बी. एल. आर. 235 (एस. सी.).

निर्णय के प्रासंगिक पैरा संख्या 5, 6, 7, 12, 13 और 14 को तत्काल संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है :–

"5. इसके बाद मामला माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष आया, जो तब तक गठित हो गया था जिसमें अधिकरण ने तारीख 23 अगस्त, 2017 को एक आदेश पारित किया जो निम्न प्रकार है –

1.12.1 शुल्क

(क) दावेदार ने सूचित किया कि मध्यस्थ की फीस के संबंध में पक्षकारों के बीच कोई करार नहीं हैं ।

(ख) प्रतिवादी ने अनुरोध किया कि मध्यस्थ की फीस एनएचएआई द्वारा उनके तारीख 1 जून, 2017 के परिपत्र के माध्यम से जारी निर्देशों के अनुसार निर्धारित की जा सकती है ।

(ग) अधिकरण ने मामले पर विचार किया और फैसला किया कि माध्यस्थता और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 की चौथी अनुसूची के उपबंधों के अनुसार मध्यस्थ की फीस को विनियमित किया जाएगा ।

6. प्रतिवादी ने, इस आदेश के विरुद्ध, अधिकरण के समक्ष तारीख 13 अक्तूबर, 2017 को एक आवेदन दिया जिसमें उसने अधिकरण को याद दिलाने का प्रयास किया कि माध्यस्थम् शुल्क करार द्वारा निर्धारित किया गया है और इसलिए, उन्हें 2017 की नीति के सदंर्भ में तय किया जा सकता है न कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की चौथी अनुसूची के अनुसार । मामला तारीख 30 जनवरी, 2018 को फिर से अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया । इसके बाद अधिकरण ने निम्नलिखित आदेश पारित किया –

'प्रत्यर्थी ने मध्यस्थ द्वारा निर्धारित शुल्क की समीक्षा के लिए और इसे एनएचएआई के तारीख 1 जून, 2017 के

परिपत्र के संदर्भ में संशोधित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया था ।

यह पता चला कि दावेदार ने अनजाने में पैरा 1.12.1(क) के अनुसार मध्यस्थ को सूचित कर दिया था कि मध्यस्थ की फीस के संबंध में पक्षकारों के बीच कोई करार नहीं हुआ था । वास्तव में, करार के अधीन मध्यस्थ के शुल्क की एक निश्चित दर, जिसके लिए पक्षकारों द्वारा सहमति दी गई है, का उपबंध किया गया है ।

इस मामले पर दोनों पक्षों द्वारा मौखिक निवेदन किया गया था । मध्यस्थ ने इस मामले पर विचार-विमर्श किया और यह विनिश्चित किया कि संशोधित अधिनियम के नवीनतम उपबंध को ध्यान में रखते हुए, मध्यस्थ पक्षकारों के करार की परवाह किए बिना शुल्क निर्धारित करने में सक्षम है । यह भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण **बनाम** गायत्री झांसी रोडवेज लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्च न्यायालय के तारीख 11 सितम्बर, 2017 के विनिश्चय के अनुसार है । माध्यस्थम् अधिकरण ने यह दोहराया कि पहली सुनवाई में निर्धारित शुल्क का पालन किया जाएगा । तद्नुसार, शुल्क को संशोधित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की चौथी अनुसूची के उपबंधों के अनुसार विनियमित किया जाएगा ।'

7. इस आदेश के विरोध में, प्रतिवादी ने मध्यस्थों के आदेश को समाप्त करने के लिए माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 14 के अधीन तारीख 8 मई, 2018 को एक आवेदन दिया, क्योंकि प्रतिवादी के अनुसार, मध्यस्थों ने जानबूझकर पक्षकारों के बीच करार की अवहेलना की थी और इसलिए, विधिक रूप से आगे कोई कार्रवाई करने में असमर्थ थे ।

12. तथापि, हम यह इंगित कर सकते हैं कि मध्यस्थों को

हटाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया आवेदन, जिसमें कहा गया है कि उनका आदेश समाप्त किया जाना चाहिए, पूरी तरह निराधार है और इसके कायम न रखे जाने का मात्र आधार यह है कि एक मध्यस्थ अपने कार्यों का निष्पादन करने में विधिक तौर पर असमर्थ नहीं है यदि, ऐसे मध्यस्थ (मध्यस्थों) द्वारा पारित जो आदेश पारित किए गए हैं उनका यह अर्थ है कि वास्तव में, करार माध्यस्थम् शुल्क को नियंत्रित करता है किन्तु वे **गायत्री झांसी रोडवेज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के विनिश्चय का पालन करने के लिए बाध्य थे, जो यह स्पष्ट करता है कि चौथी अनुसूची और करार शासित नहीं होगा ।

13. मध्यस्थों ने केवल दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित विधि का पालन किया और इस आधर पर, यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने कुछ भी गलत किया है और यह कि उनका आदेश समाप्त किया जाए जैसा कि वे अब अपने कार्यों को करने में विधिक तौर पर असमर्थ हो गए हैं । इसलिए, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने धारा 14 के अधीन आवेदन की आनुमति देकर गलती की है और हम इस आधार पर विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय को खारिज करते हैं ।

14. हालांकि, विद्वान् एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष है कि धारा 31 (8) सपठित धारा 31क की भाषा में परिवर्तन, जो आमतौर पर केवल लागतों से संबंधित है और मध्यस्थ की फीस से संबंधित नहीं है, विधि में सही है । यह सच है कि मध्यस्थ की फीस भुगतान की जाने वाली लागत का एक घटक हो सकती है, लेकिन इसके बाद यह कहना बहुत दूर की बात होगी कि धारा 31(8) और 31क सीधे उन संविदाओं को शासित करेगी जिनमें शुल्क संरचना पहले ही निर्धारित की जा चुकी है । इस सीमा तक, विद्वान् एकल न्यायाधीश सही है । हम यह भी कह सकते हैं कि **गायत्री झांसी रोडवेज** (उपरोक्त) वाले मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा विधि की घोषणा का सही दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है ।"

24. याचियों के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि इस न्यायालय ने **दोषीयन प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अत्यधिक फीस प्रभारित करने का अनुमोदन नहीं किया है, यह कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमान मामले में, एकल मध्यस्थ की फीस अनुसूची-IV के साथ पठित अधिनियम, 1996 की धारा 11 की उपधारा (14) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के अनुसार निर्धारित की गई है । ब्याज की राशि के मात्राकरण के बाद कुल दावे के आधार पर, यदि अधिनियम, 1996 में संलग्न अनुसूची-IV का पालन किया गया है, एकल मध्यस्थ के इस प्रकार के निर्णय में कोई अवैधता नहीं पाई जा सकती है ।

25. इस न्यायालय का यह भी मत है कि याचियों ने तारीख 28 अप्रैल, 2019 को पारित उस प्रारंभिक आदेश के बाद कई चरणों में एकल मध्यस्थ के समक्ष माध्यस्थम् की कार्यवाही में भाग लिया है, जिसके अनुसार ब्याज और माध्यस्थम् अधिकरण शुल्क की राशि के मात्राकरण के पुनर्निर्धारण की अनुमति दी गई है । माध्यस्थम् की कार्यवाही में लगातार भाग लेने सम्बन्धी याचियों के आचरण से स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि जब मामले की अंतिम चरण में सुनवाई की गई है तब उन्होंने निचले न्यायालय के समक्ष एकल मध्यस्थ के आदेशों को चुनौती दी । चूंकि याचियों ने माध्यस्थम् कार्यवाहियों में भाग लिया है, इसलिए उन्हें माध्यस्थम् अधिकरण की फीस के पुनर्निर्धारण से सम्बंधित एकल मध्यस्थ के आदेश को चुनौती देने से रोका जाता है । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि याची का यह आचरण कि उन्होंने माध्यस्थम् की कार्यवाही में भाग लिया है, उन्हें एकल मध्यस्थ द्वारा तत्पश्चात् पारित आदेश को चुनौती देने से रोकता है ।

26. तद्नुसार, याचियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिका में कोई सार नहीं है, इसलिए इसे खारिज किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

मही./अस.

शिव दाई और अन्य

बनाम

राय सिंह और एक अन्य

(2018 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 294)

तारीख 30 अप्रैल, 2021

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ

उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 63 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65] – विल का निष्पादन – विल की मूल प्रति का उपलब्ध न होना – प्रत्यर्थी द्वारा द्वितीय साक्ष्य के रूप में विल की फोटोकापी प्रस्तुत किया जाना – लोक कार्यालय में भी मूल प्रति का न पाया जाना – यदि द्वितीय साक्ष्य युक्तियुक्त और तथ्यात्मक आधारों से समर्थित है तब उसे प्रस्तुत किया जा सकता है और इसके लिए न्यायालय में अलग से आवेदन करने की आवश्यकता नहीं है ।

इस मामले में याची/वादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 15 जून, 2018 को पारित उस आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1/प्रतिवादी सं. 1 द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन प्रस्तुत किया गया आवेदन मंजूर किया गया और तारीख 7 नवंबर, 1987 वाली मूल विल की फोटोकापी अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने के लिए अनुज्ञात की गई । इस आदेश से व्यथित होकर याचियों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है । याचियों द्वारा इस संबंध में घोषणा के लिए वाद फाइल किया गया कि वे वाद भूमि में विनिर्दिष्ट शेयर की सीमा तक प्रतिवादियों के साथ कब्जाधारी सह-स्वामी हैं और यह कि तारीख 15 मार्च, 1988 को स्वर्गीय सुदामा राम की संपत्ति के संबंध में मंजूर और अभिप्रमाणित किया गया नामांतरण सं. 54 अवैध,

अकृत और शून्य था । स्थायी व्यादेश से मिलने वाले पारिणामिक अनुतोष की भी ईप्सा की गई । प्रतिवादी सं. 1 (जो इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 है) ने वाद का अन्य बातों के साथ विरोध किया और यह दावा किया कि वादियों और प्रतिवादियों के पिता ने प्रतिवादियों के पक्ष में तारीख 7 नवंबर, 1987 को एक विल निष्पादित की थी । मृतक की संपत्ति का नामांतरण प्रतिवादियों के पक्ष में समान अंश के साथ तद्नुसार मंजूर और अनुप्रमाणित किया गया । विल की मूल प्रति राजस्व अधिकारियों को नामांतरण मंजूर किए जाने के समय दिखाई गई । आगे यह भी कहा गया है कि तारीख 15 मार्च, 1988 का नामांतरण सं. 54 वादियों की मौजूदगी में मंजूर और अनुप्रमाणित किया गया था जिन्होंने विल की असलियत पर कोई आपत्ति नहीं की । तारीख 7 नवंबर, 1987 की इस विल की प्रति लिखित-कथन के साथ संलग्न है । तारीख 11 मई, 2017 को प्रतिवादी सं. 1 ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें तारीख 7 नवंबर, 1987 की मूल विल की फोटोकापी को अभिलेख पर द्वितीय साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रार्थना की । यह आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि नामांतरण सं. 54 के अनुप्रमाणन मूल विल के आधार पर किए जाने के पश्चात् विल की मूल प्रति प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रतिवादी सं. 2 को दे दी गई थी । प्रतिवादी सं. 2, वादियों से मिला हुआ है और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा कई बार निवेदन किए जाने के बावजूद विल की मूल प्रति प्रस्तुत नहीं की गई है । यह भी कथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ पठित आदेश 12, नियम 8 के अधीन आवेदन तारीख 8 जून, 2016 को प्रस्तुत किया गया । इस आवेदन के फाइल किए जाने के पश्चात् प्रतिवादी सं. 2 को न्यायालय की ओर से नोटिस जारी किया गया जिसका उत्तर देते हुए प्रतिवादी सं. 2 ने इस बात से इनकार किया कि उसे विल की मूल प्रति सौंपी गई थी । तद्नुसार, विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 9 मई, 2017 को इस आवेदन का निपटारा करते हुए प्रतिवादियों का मामला साक्ष्य

अभिलिखित किए जाने के लिए नियत किया । प्रतिवादी सं. 1 का यह भी निवेदन है कि चूंकि उसकी संपूर्ण प्रतिरक्षा तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल पर आधारित है, अत: यह विल, इसका निष्पादन साबित किए जाने के लिए अभिलेख पर प्रस्तुत की जानी चाहिए । इन दलीलों के आधार पर तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति की फोटोकापी द्वितीय साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रार्थना की गई । इस आवेदन का विरोध याचियों द्वारा किया गया । इस बात से इनकार किया गया है कि पक्षकारों के पिता ने अपने जीवनकाल के दौरान तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल निष्पादित की । याचियों ने यह निवेदन किया है कि प्रतिवादी सं. 1 ने स्वयं को आपराधिक मुकदमे से बचाने के लिए इस दस्तावेज को रोका था क्योंकि वह कूटरचित दस्तावेज था । एक अन्य दलील यह दी गई है कि लिखित कथन में प्रतिवादी सं. 1 ने यह उल्लेख नहीं किया था कि उसने विल की मूल प्रति प्रतिवादी सं. 2 को दी थी । पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 15 जून, 2018 के उस आदेश द्वारा आवेदन मंजूर किया जिसके अनुसार प्रतिवादी सं. 1 को तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात किया गया । उपरोक्त पृष्ठभूमि में याचियों द्वारा वर्तमान याचिका फाइल की गई है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मुक़दमे का पक्षकार यदि चाहे तो ऐसा आवेदन फाइल कर सकता है किन्तु यदि वाद के उस पक्षकार ने द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए वादपत्र या साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया में पहले ही बुनियादी अपेक्षाओं को पूरा कर दिया है तब द्वितीयक साक्ष्य मात्र इस कारण अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इसे प्रस्तुत करने हेतु अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए पहले से कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था । उपरोक्त विधिक स्थिति के आलोक में यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी सं. 1 का यह अभिवाक् है कि तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति के आधार पर नामांतरण सं. 54 तारीख 15 मार्च, 1988 को अनुप्रमाणित की गई । प्रत्यर्थी सं. 1 ने

विल की मूल प्रति की फोटोकापी को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रार्थना की है और यह कथन किया है कि विल की मूल प्रति लोक कार्यालय से उपाप्त की जा सकती है । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा ली गई संपूर्ण प्रतिरक्षा उसका लिखित कथन है जो अन्य बातों के साथ तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल पर आधारित है । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 12, नियम 8 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में यह प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी सं. 2 विल की मूल प्रति प्रस्तुत करे, इस आवेदन का निपटारा इस आधार पर किया जाता है कि प्रतिवादी सं. 2 ने इस बात से इनकार किया है कि उसके पास इस विल की मूल प्रति है । तारीख 15 जून, 2018 को आक्षेपित आदेश पारित किए जाने पर प्रतिवादियों को साक्ष्य प्रस्तुत करना था । प्रत्यर्थी सं. 1 ने द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने का मामला सिद्ध कर दिया है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति की फोटोकापी अभिलेख पर द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की है । इस साक्ष्य की सुसंगतता, ग्राह्यता और प्रभाव पर विचार न्यायालय में बहस के दौरान किया जाएगा । मामले की सुनवाई के दौरान पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल ने संयुक्त रूप से यह निवेदन किया है कि चूंकि प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया गया है इसलिए मामला विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष बहस के लिए नियत कर दिया गया है । (पैरा 3 और 4)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2020] (2020) 5 एस. सी. सी. 178 =
ए. आई. आर. 2020 एस. सी. 2319 :
जगमेल सिंह और एक अन्य बनाम
करमजीत सिंह और अन्य ; 3(iii)(ग)

[2020] (2020) 16 एस. सी. सी. 209 = ए. आई. आर. 2020 एस. सी. 2666 : **धनपत** बनाम **शिव राम (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** ; 3(iii)(घ)

[2016] (2016) 16 एस. सी. सी. 483 = 2015 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6271 : **राकेश मोहिन्द्र** बनाम **अनीता बेरी** ; 3(iii)(ग)

[2013] (2013) 2 एस. सी. सी. 114 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 415 : **यू. श्री** बनाम **यू. श्रीनिवास** ; 3(iii)(ख)

[2011] (2011) 4 एस. सी. सी. 240 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492 : **एच. सिद्दीकी** बनाम **ए. रामालिंगम** ; 3(iii)(ख)

[2010] (2010) 9 एस. सी. सी. 712 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 146 : **एम. चन्द्र** बनाम **एम. तंगामुतु** ; 3(iii)(ख)

[2007] (2007) 5 एस. सी. सी. 730 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721 : **जे. यशोदा** बनाम **के. शोभा रानी** ; 3(iii)(ख)

[1975] (1975) 4 एस. सी. सी. 664 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1748 : **अशोक दुलीचंद** बनाम **महादेव लाल दुबे** । 3(iii)(ग)

सिविल रिट अधिकारिता : 2018 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं. 294.

विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 15 जून, 2018 के आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री अंजलि सोनी वर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री संजय पराशर

आदेश

याची/वादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 15 जून, 2018 को पारित उस आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1/प्रतिवादी सं. 1 द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन प्रस्तुत किया गया आवेदन मंजूर किया गया और तारीख 7 नवंबर, 1987 वाली मूल विल की फोटोकापी अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने के लिए अनुज्ञात की गई । इस आदेश से व्यथित होकर याचियों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है ।

2. इस याचिका के न्यायनिर्णयन के लिए संक्षिप्त तथ्य निम्न प्रकार हैं –

2(i). याचियों द्वारा इस संबंध में घोषणा के लिए वाद फाइल किया गया कि वे वाद भूमि में विनिर्दिष्ट शेयर की सीमा तक प्रतिवादियों के साथ कब्जाधारी सह-स्वामी हैं और यह कि तारीख 15 मार्च, 1988 को स्वर्गीय सुदामा राम की संपत्ति के संबंध में मंजूर और अभिप्रमाणित किया गया नामांतरण सं. 54 अवैध, अकृत और शून्य था । स्थायी व्यादेश से मिलने वाले पारिणामिक अनुतोष की भी ईप्सा की गई ।

2(ii). प्रतिवादी सं. 1 (जो इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 है) ने वाद का अन्य बातों के साथ विरोध किया और यह दावा किया कि वादियों और प्रतिवादियों के पिता ने प्रतिवादियों के पक्ष में तारीख 7 नवंबर, 1987 को एक विल निष्पादित की थी । मृतक की संपत्ति का नामांतरण प्रतिवादियों के पक्ष में समान अंश के साथ तद्नुसार मंजूर और अनुप्रमाणित किया गया । विल की मूल प्रति राजस्व अधिकारियों को नामांतरण मंजूर किए जाने के समय दिखाई गई । आगे यह भी कहा गया है कि तारीख 15 मार्च, 1988 का नामांतरण सं. 54 वादियों की मौजूदगी में मंजूर और अनुप्रमाणित किया गया था जिन्होंने विल की असलियत पर कोई आपत्ति नहीं की । तारीख 7 नवंबर, 1987 की इस विल की प्रति लिखित-कथन के साथ संलग्न है ।

2(iii). तारीख 11 मई, 2017 को प्रतिवादी सं. 1 ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें तारीख 7 नवंबर, 1987 की मूल विल की फोटोकापी को अभिलेख पर द्वितीय साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रार्थना की । यह आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि नामांतरण सं. 54 के अनुप्रमाणन मूल विल के आधार पर किए जाने के पश्चात् विल की मूल प्रति प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रतिवादी सं. 2 को दे दी गई थी । प्रतिवादी सं. 2, वादियों से मिला हुआ है और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा कई बार निवेदन किए जाने के बावजूद विल की मूल प्रति प्रस्तुत नहीं की गई है । यह भी कथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ पठित आदेश 12, नियम 8 के अधीन आवेदन तारीख 8 जून, 2016 को प्रस्तुत किया गया । इस आवेदन के फाइल किए जाने के पश्चात् प्रतिवादी सं. 2 को न्यायालय की ओर से नोटिस जारी किया गया जिसका उत्तर देते हुए प्रतिवादी सं. 2 ने इस बात से इनकार किया कि उसे विल की मूल प्रति सौंपी गई थी । तद्नुसार, विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 9 मई, 2017 को इस आवेदन का निपटारा करते हुए प्रतिवादियों का मामला साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के लिए नियत किया । प्रतिवादी सं. 1 का यह भी निवेदन है कि चूंकि उसकी संपूर्ण प्रतिरक्षा तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल पर आधारित है, अत: यह विल, इसका निष्पादन साबित किए जाने के लिए अभिलेख पर प्रस्तुत की जानी चाहिए । इन दलीलों के आधार पर तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति की फोटोकापी द्वितीय साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रार्थना की गई ।

2(iv). इस आवेदन का विरोध याचियों द्वारा किया गया । इस बात से इनकार किया गया है कि पक्षकारों के पिता ने अपने जीवनकाल के दौरान तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल निष्पादित की । याचियों ने यह निवेदन किया है कि प्रतिवादी सं. 1 ने स्वयं को आपराधिक मुकदमे से बचाने के लिए इस दस्तावेज को रोका था क्योंकि वह कूटरचित दस्तावेज था । एक अन्य दलील यह दी गई है कि लिखित कथन में

प्रतिवादी सं. 1 ने यह उल्लेख नहीं किया था कि उसने विल की मूल प्रति प्रतिवादी सं. 2 को दी थी ।

2(v). पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 15 जून, 2018 के उस आदेश द्वारा आवेदन मंजूर किया जिसके अनुसार प्रतिवादी सं. 1 को तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात किया गया । उपरोक्त पृष्ठभूमि में याचियों द्वारा वर्तमान याचिका फाइल की गई है ।

3. पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् हमारी सुविचारित राय में आक्षेपित आदेश में निम्न कारणों के आधार पर कोई कमी नहीं है –

3(i). प्रतिवादी सं. 1 (जो इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 है) ने अपनी संपूर्ण प्रतिरक्षा तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल के आधार पर ली है जिसके संबंध में यह अभिकथन किया गया है कि वह पक्षकारों के पिता द्वारा निष्पादित की गई थी । प्रतिवादी सं. 1 ने अपने लिखित कथन में यह अभिवाक् किया है कि नामांतरण सं. 54 तारीख 15 मार्च, 1988 को प्रतिवादियों के पक्ष में विल की मूल प्रति प्रस्तुत किए जाने पर मंजूर और अनुप्रमाणित की गई थी ।

3(ii). यह भी स्वीकृत तथ्य है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 12, नियम 8 के अधीन आवेदन प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा तारीख 8 जून, 2016 को प्रस्तुत किया गया था जिसमें प्रतिवादी सं. 2 से विल की मूल प्रति प्रस्तुत करने की ईप्सा की गई थी । प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 9 मई, 2017 को फाइल किए गए अपने उत्तर में इस बात से इनकार किया कि प्रतिवादी सं. 1 ने विल की मूल प्रति उसे सौंपी थी । इस उत्तर पर विचार करने पर तारीख 5 मई, 2017 को आवेदन का निपटारा किया गया । अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों से यह पता चलता है कि प्रतिवादी सं. 2 का झुकाव याचियों की ओर है ।

3(iii)(क). इस प्रक्रम पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 को उद्धृत करना महत्वपूर्ण होगा :–

'65. **अवस्थाएं जिनमें दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य दिया जा सकेगा** – किसी दस्तावेज के अस्तित्व, दशा या अन्तर्वस्तु का द्वितीयक साक्ष्य निम्नलिखित अवस्थाओं में दिया जा सकेगा –

(क) जबकि यह दर्शित कर दिया जाए या प्रतीत होता हो कि मूल ऐसे व्यक्ति के कब्जे में या शक्तयाधीन है –

जिसके विरुद्ध उस दस्तावेज तक साबित किया जाना ईप्सित है, अथवा जो न्यायालय की आदेशिका की पहुंच के बाहर है, या ऐसी आदेशिका के अध्यधीन नहीं है, अथवा जो उसे पेश करने के लिए वैध रूप से आबद्ध है,

और जबकि ऐसा व्यक्ति धारा 66 में वर्णित सूचना के पश्चात् उसे पेश नहीं करता है ;

(ख) जबकि मूल के अस्तित्व, दशा या अंतर्वस्तु को उस व्यक्ति द्वारा, जिसके विरुद्ध उसे साबित किया जाना है या उसके हित प्रतिनिधि द्वारा लिखित रूप में स्वीकृत किया जाना साबित कर दिया गया है ;

(ग) जबकि मूल नष्ट हो गया है, या खो गया है अथवा जबकि उसकी अंतर्वस्तु का साक्ष्य देने की प्रस्तावना करने वाला पक्षकार अपने स्वयं के व्यतिक्रम या उपेक्षा से अनुद्भूत अन्य किसी कारण से उसे युक्तियुक्त समय में पेश नहीं कर सकता ;

(घ) जबकि मूल इस प्रकृति का है कि उसे आसानी से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता ;

(ङ) जबकि मूल धारा 74 के अर्थ के अंतर्गत एक लोक दस्तावेज़ है ;

(च) जबकि मूल ऐसी दस्तावेज़ जिसकी प्रमाणित प्रति का

साक्ष्य में दिया जाना इस अधिनियम द्वारा या भारत में प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अनुज्ञात है ;

(छ) जबकि मूल ऐसे अनेक लेखाओं या अन्य दस्तावेजों से गठित है जिनकी न्यायालय में सुविधापूर्वक परीक्षा नहीं की जा सकती और वह तथ्य जिसे साबित किया जाना है सम्पूर्ण संग्रह का साधारण परिणाम है ।

अवस्थाओं (क) (ग) और (घ) में दस्तावेजों की अंतर्वस्तु का कोई भी द्वितीयक साक्ष्य ग्राह्य है ।

अवस्था (ख) में वह लिखित स्वीकृति ग्राह्य है ।

अवस्था (ड़) या (च) में दस्तावेज की प्रमाणित प्रति ग्राह्य है, किन्तु अन्य किसी भी प्रकार का द्वितीयक साक्ष्य ग्राह्य नहीं है ।

अवस्था (छ) में दस्तावेजों के साधारण परिणाम का साक्ष्य ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा दिया जा सकेगा जिसने उनकी परीक्षा की है और जो ऐसी दस्तावेजों की परीक्षा करने में कुशल है ।

3(iii)(ख). **जे. यशोदा** बनाम **के. शोभा रानी**[1], **एम. चन्द्र** बनाम **एम. तंगामुतु**[2], **एच. सिद्दीकी** बनाम **रामालिंगम**[3] और **यू. श्री** बनाम **यू. श्रीनिवास**[4] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि अन्य बातों के साथ निम्न अपेक्षाएं पूरी हो जाएं तब सामान्य दस्तावेज के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य मंजूर किया जा सकता है :–

'(i) द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए, प्रश्नगत दस्तावेज का प्रस्तुत न किया जाना समुचित रूप से ऐसे कारणों से स्पष्ट किया जाना चाहिए जो विश्वासोत्पादक हों ।'

---

[1] (2007) 5 एस. सी. सी. 730 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721.

[2] (2010) 9 एस. सी. सी. 712 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 146.

[3] (2011) 4 एस. सी. सी. 240 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492.

[4] (2013) 2 एस. सी. सी. 114 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 415.

(ii) दस्तावेज की मूल प्रति को प्रस्तुत करने में पक्षकार सत्यनिष्ठ रूप से असमर्थ हो और इससे न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि पक्षकार ने वह सब किया है जिसकी उससे अपेक्षा की जा सकती है । अन्य किसी कारण या स्वयं की लापरवाही को इसका आधार नहीं माना जा सकता ।

(iii) पक्षकार ने न्यायालय के समक्ष यह साबित कर दिया हो कि प्रश्नगत दस्तावेज इसके पास या उसके नियंत्रण में नहीं था और उसने वह सब किया है जो वह उसे प्राप्त करने के लिए कर सकता था ।

(iv) द्वितीयक साक्ष्य ऐसे बुनियादी साक्ष्य द्वारा प्राधिकृत होना चाहिए कि अभिकथित प्रतिलिपि वास्तव में मूल दस्तावेज की सत्य लिपि है ।

3(iii)(ग). **जगमेल सिंह और एक अन्य** बनाम **करमजीत सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में अपीलार्थियों ने इस संबंध में घोषणा का वाद फाइल किया कि वे भूमि के स्वामी हैं और प्रत्यर्थियों के पक्ष में अनुप्रमाणित किया गया नामांतरण अकृत और शून्य है क्योंकि वह कूटरचित विल पर आधारित है । वाद के लंबित रहने के दौरान साक्ष्य अधिनियम की धारा 65/66 के अधीन आवेदन फाइल किया गया जिसमें द्वितीयक साक्ष्य के माध्यम से वसीयत की सत्यलिपि साबित किए जाने हेतु अनुज्ञा की ईप्सा की । विचारण न्यायालय ने यह आवेदन मंजूर कर दिया, तथापि, इस आवेदन की मंजूरी के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया जिसके परिणामस्वरूप मंजूरी का आदेश अपास्त कर दिया गया । इसके पश्चात् साक्ष्य अधिनियम की धारा 65/66 के अधीन एक अन्य आवेदन विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया जिसमें राजस्व अधिकारियों को इस संबंध में नोटिस जारी किए जाने की ईप्सा की गई कि वे इस आधार पर विल की मूल प्रति प्रस्तुत करें कि वह मूल प्रति नामांतरण मंजूर किए जाने के

[1] (2020) 5 एस. सी. सी. 178 = ए. आई. आर. 2020 एस. सी. 2319.

लिए राजस्व प्राधिकारियों को सौंपी गई थी । इस पृष्ठभूमि में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 67 के निबंधनों में यह अभिनिर्धारित किया कि द्वितीयक साक्ष्य किसी दस्तावेज की विद्यमानता, दशा या अंतर्वस्तु के संबंध में तब प्रस्तुत किया जा सकता है जब मूल दस्तावेज प्रदर्शित किया जाए या वह दस्तावेज उसके कब्जे में या उसकी शक्ति के अधीन है जिसके विरुद्ध वह दस्तावेज प्रस्तुत किए जाने की ईप्सा की गई है या वह दस्तावेज ऐसे व्यक्ति के कब्जे में हैं जो पहुंच के बाहर है या न्यायालय की प्रक्रिया के अध्यधीन नहीं है या वह दस्तावेज ऐसे व्यक्ति के कब्जे में है जो उसे प्रस्तुत करने के लिए विधिक रूप से बाध्य है और जब साक्ष्य अधिनियम की धारा 66 में उल्लिखित नोटिस दिए जाने के पश्चात् ऐसा व्यक्ति उसे प्रस्तुत न करे । विधि की सुस्थापित स्थिति को इस संबंध में दोहराया गया है कि द्वितीयक साक्ष्य स्वीकार किए जाने के लिए बुनियादी साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसके साथ यह स्पष्ट होना चाहिए की दस्तावेज की मूल प्रति किस कारण प्रस्तुत नहीं की गई है । इसके अतिरिक्त **अशोक दुलीचन्द** बनाम **महादेवलाल दुबे**[1] और **राकेश मोहिन्द्र** बनाम **अनीता बेरी**[2] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया गया :–

> "14. सभी जानते हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन प्राथमिक साक्ष्य द्वारा तथ्य सिद्ध किए जाने चाहिए और द्वितीयक साक्ष्य इस नियम का एक अपवाद है जिसके लिए बुनियादी तथ्य सिद्ध किए जाने चाहिए ताकि प्राथमिक साक्ष्य की विद्ग्धानता साबित की जा सके । **एच. सिद्दीकी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह दोहराया है कि जहाँ मूल दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए जाते हैं वहां न्यायालय के लिए यह अनुज्ञेय नहीं है कि युक्तियुक्त कारण और तथ्यात्मक आधार के बिना द्वितीयक साक्ष्य को स्वीकार किया जाए ।

---

[1] (1975) 4 एस. सी. सी. 664 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1748.

[2] (2016) 16 एस. सी. सी. 483 = 2015 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6271.

16. वर्तमान मामले में आच्छादित उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के अधिकार को सिद्ध करने का तथ्यात्मक आधार अपीलार्थियों द्वारा अधिकथित किया गया है और इस प्रकार उच्च न्यायालय को उन्हें द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए था । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन न करके और यह अभिनिर्धारित करके कि विल की विद्यमानता एक पुरोभाव्य शर्त है और यह कि विल अभिलेख पर साबित नहीं की गई है, विधि की घोर त्रुटि की है ।"

3(iii)(घ). **धनपत** बनाम **शिव राम (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसी कोई अपेक्षा नहीं की गई है कि द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के पूर्व साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(ग) के निबंधनों में इस सम्बन्ध में आवेदन फाइल किया जाना चाहिए । मुक़दमे का पक्षकार यदि चाहे तो ऐसा आवेदन फाइल कर सकता है किन्तु यदि वाद के उस पक्षकार ने द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए वादपत्र या साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया में पहले ही बुनियादी अपेक्षाओं को पूरा कर दिया है तब द्वितीयक साक्ष्य मात्र इस कारण अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इसे प्रस्तुत करने हेतु अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए पहले से कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था । इस निर्णय के सुसंगत पैरा निम्न प्रकार हैं :–

"18. अहेर रामा गोवा **बनाम** गुजरात राज्य [ए. आई. आर 1979 एस. सी. 1567] वाले मामले में दिए गए निर्णय में मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित मृत्यु कालिक कथन, साक्ष्य प्रक्रिया के दौरान, द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया । इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि मृत्युकालिक कथन की मूल प्रति प्रस्तुत नहीं की गई थी लेकिन साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल प्रति नष्ट हो चुकी है और अब उपलब्ध नहीं है ।

[1] (2020) 16 एस. सी. सी. 209 = ए. आई. आर. 2020 एस. सी. 2666.

स्वयं मजिस्ट्रेट ने सशपथ यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने हैड कांस्टेबल को मृत्युकालिक कथन की मूल प्रति सौंपी थी जबकि हैड कांस्टेबल ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने उसकी फोटोकापी करवाकर मूल प्रति मजिस्ट्रेट को वापस दे दी थी । अतः, न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मृत्युकालिक कथन की मूल प्रति उपलब्ध नहीं थी और अभियोजन पक्ष द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने का हकदार था जिसके समर्थन में मजिस्ट्रेट और हैड कांस्टेबल का कथन भी प्रस्तुत किया गया था जिसके अनुसार पता चलता है कि हैड कांस्टेबल ने मृत्युकालिक कथन की मूल प्रति से फोटोकापी कराई थी । इस प्रकार, साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया में मृत्युकालिक कथन द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने के लिए अनुज्ञात किया गया जबकि द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए कोई भी आवेदन फाइल नहीं किया गया था ।

19. यद्यपि पूर्वोक्त निर्णय विक्रय विलेख खो जाने के संबंध में है फिर भी उक्त सिद्धांत विल के मामले में भी लागू होगा जो कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के निबंधनों में विल साबित किए जाने के अध्यधीन होगा । वर्तमान मामले में भी विल लाभार्थी के कब्जे में थी और यह बताया गया कि विल कहीं खो गई है । यह विल तारीख 30 अप्रैल, 1980 की है जबकि वसीयतकर्ता की मृत्यु तारीख 15 जनवरी, 1982 को हुई है । विल की मूल प्रति के खो जाने के संबंध में प्रतिवादियों के किसी भी साक्षी की प्रतिपरीक्षा नहीं कराई गई है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन किसी दस्तावेज की मूल प्रति नष्ट हो जाने या कहीं खो जाने पर उस दस्तावेज की विद्यमानता, दशा और अन्तर्वस्तु से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए अनुज्ञात किया गया है । वादी ने इस वसीयत के निष्पादन को स्वीकार किया है यद्यपि यह अभिकथन किया गया है कि यह निष्पादन कपट और दुर्व्यपदेशन द्वारा किया गया था । वसीयत के निष्पादन पर वादी द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया है किंतु वसीयत का मात्र साबित किया

जाना ही इस वाद की विषयवस्तु है । अतः, जब एक बार प्रतिवादियों ने यह साक्ष्य दिया है कि विल की मूल प्रति खो चुकी है और अनुप्रमाणित प्रति प्रस्तुत की गई है, तब ऐसी स्थिति में प्रतिवादियों के पास द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त आधार है ।

22. इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के पूर्व साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(ग) के निबंधनों में ऐसे साक्ष्य को स्वीकार किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाना चाहिए । मुकदमे का पक्षकार यदि चाहे तो आवेदन फाइल कर सकता है जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है किंतु यदि वाद के किसी भी पक्षकार ने द्वितीयक साक्ष्य से संबंधित बुनियादी तथ्य वादपत्र में या साक्ष्य अभिलिखित किए जाने की प्रक्रिया के दौरान प्रस्तुत कर दिए हैं तब द्वितीयक साक्ष्य को मात्र इस आधार पर अनदेखा नहीं किया जा सकता कि द्वितीयक साक्ष्य पर विचार किए जाने की अनुमति हेतु आवेदन फाइल नहीं किया गया है ।"

4. उपरोक्त विधिक स्थिति के आलोक में यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी सं. 1 का यह अभिवाक् है कि तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति के आधार पर नामांतरण सं. 54 तारीख 15 मार्च, 1988 को अनुप्रमाणित की गई । प्रत्यर्थी सं. 1 ने विल की मूल प्रति की फोटोकापी को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रार्थना की है और यह कथन किया है कि विल की मूल प्रति लोक कार्यालय से उपाप्त की जा सकती है । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा ली गई संपूर्ण प्रतिरक्षा उसका लिखित कथन है जो अन्य बातों के साथ तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल पर आधारित है । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 12 नियम 8 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में यह प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी सं. 2 विल की मूल प्रति प्रस्तुत करे, इस आवेदन का निपटारा इस आधार पर किया जाता है कि प्रतिवादी सं. 2 ने इस बात से इनकार किया है कि उसके पास इस

विल की मूल प्रति है । तारीख 15 जून, 2018 को आक्षेपित आदेश पारित किए जाने पर प्रतिवादियों को साक्ष्य प्रस्तुत करना था । प्रत्यर्थी सं. 1 ने द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने का मामला सिद्ध कर दिया है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 7 नवंबर, 1987 की विल की मूल प्रति की फोटोकापी अभिलेख पर द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की है । इस साक्ष्य की सुसंगतता, ग्राह्यता और प्रभाव पर विचार न्यायालय में बहस के दौरान किया जाएगा । मामले की सुनवाई के दौरान पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल ने संयुक्त रूप से यह निवेदन किया है कि चूंकि प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया गया है इसलिए मामला विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष बहस के लिए नियत कर दिया गया है ।

उपरोक्त सभी कारणों के आधार पर वर्तमान याचिका सारहीन है और तद्नुसार लंबित प्रकीर्ण आवेदनों, यदि कोई हैं, के साथ खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

अस.

संसद् के अधिनियम

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

(1994 का अधिनियम संख्यांक 10)

[8 जनवरी, 1994]

मानव अधिकारों के अधिक अच्छे संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्यों में राज्य मानव अधिकार आयोगों और मानव अधिकार न्यायालयों का गठन करने तथा उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के चवालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है :

परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य को केवल वहां तक लागू होगा जहां तक इसका संबंध उस राज्य को यथा लागू संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 या सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों से है ।

(3) यह 28 सितंबर, 1993 को प्रवृत्त हुआ समझा जाएगा ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "सशस्त्र बल" से नौसेना, सेना और वायु सेना अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत संघ का कोई अन्य सशस्त्र बल है ;

(ख) "अध्यक्ष" से, यथास्थिति, आयोग का या राज्य आयोग का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ग) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अभिप्रेत है ;

(घ) "मानव अधिकार" से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं ;

(ङ) "मानव अधिकार न्यायालय" से धारा 30 के अधीन विनिर्दिष्ट मानव अधिकार न्यायालय अभिप्रेत है ;

[1][(च) "अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा" से संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 16 दिसंबर, 1966 को अंगीकार की गई सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अंगीकार की गई ऐसी अन्य प्रसंविदा या अभिसमय, जो केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, अभिप्रेत है ;]

[1][(छ) "सदस्य" से, यथास्थिति, आयोग का या राज्य आयोग का सदस्य अभिप्रेत है ;]

(ज) "राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग" से राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 (1992 का 19) की धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अभिप्रेत है ;

[1][(झ) "राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग" से संविधान के अनुच्छेद 338 में निर्दिष्ट राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग अभिप्रेत है ;

(झक) "राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग" से संविधान के अनुच्छेद 338क में निर्दिष्ट राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग अभिप्रेत है ;]

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ञ) "राष्ट्रीय महिला आयोग" से राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 (1990 का 20) की धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय महिला आयोग अभिप्रेत है ;

(ट) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(ठ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ड) "लोक सेवक" का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 में है ;

(ढ) "राज्य आयोग" से धारा 21 के अधीन गठित राज्य मानव अधिकार आयोग अभिप्रेत है ।

(2) इस अधिनियम में किसी ऐसी विधि के, जो जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवृत्त नहीं है, प्रति किसी निर्देश का उस राज्य के संबंध में, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में प्रवृत्त किसी तत्स्थानी विधि के, यदि कोई हो, प्रति निर्देश है ।

अध्याय 2
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

3. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार, एक निकाय का, जो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के नाम से ज्ञात होगा, इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए, गठन करेगी ।

(2) आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है ;

(ख) एक सदस्य, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है ;

(ग) एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है या रहा है ;

(घ) दो सदस्य, जो ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाएंगे जिन्हें मानव अधिकारों से संबंधित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है ।

(3) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, [1][राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग] और राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष धारा 12 के खंड (ख) से खंड (ञ) में विनिर्दिष्ट कृत्यों के निर्वहन के लिए आयोग के सदस्य समझे जाएंगे ।

(4) एक महासचिव होगा, जो आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और वह आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा, [1][(न्यायिक कृत्यों और धारा 40ख के अधीन विनियम बनाने की शक्ति के सिवाय) जो, यथास्थिति, आयोग या अध्यक्ष उसे प्रत्यायोजित करे ।]

(5) आयोग का मुख्यालय दिल्ली में होगा और आयोग, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, भारत में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित कर सकेगा ।

4. अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति – (1) राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा अध्यक्ष और [2][सदस्यों] को नियुक्त करेगा :

परन्तु इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात् की जाएगी जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात् :–

(क) प्रधानमंत्री – अध्यक्ष ;

(ख) लोक सभा का अध्यक्ष – सदस्य ;

(ग) भारत सरकार के गृह मंत्रालय का भारसाधक मंत्री – सदस्य ;

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(घ) लोक सभा में विपक्ष का नेता – सदस्य ;

(ङ) राज्य सभा में विपक्ष का नेता – सदस्य ;

(च) राज्य सभा का उप सभापति – सदस्य :

परन्तु यह और कि उच्चतम न्यायालय का कोई आसीन न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का कोई आसीन मुख्य न्यायमूर्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् ही नियुक्त किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

(2) अध्यक्ष या किसी सदस्य की कोई नियुक्ति केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि [1][उपधारा (1) के पहले परन्तुक में निर्दिष्ट समिति में किसी सदस्य की कोई रिक्ति है ।]

[2][**5. अध्यक्ष और सदस्यों का त्यागपत्र और हटाया जाना** – (1) अध्यक्ष या कोई सदस्य, राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित सूचना द्वारा अपना पद त्याग सकेगा ।

(2) उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए अध्यक्ष, या किसी सदस्य को केवल साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर किए गए राष्ट्रपति के ऐसे आदेश से उसके पद से हटाया जाएगा, जो उच्चतम न्यायालय को, राष्ट्रपति द्वारा निर्देश किए जाने पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जांच पर यह रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् किया गया है कि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसे सदस्य को ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाए ।

(3) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई सदस्य, –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है ; या

(ख) अपनी पदावधि में अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ग) मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ; या

(ङ) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दण्डादिष्ट किया जाता है जिसमें, राष्ट्रपति की राय में, नैतिक अधमता अंतर्वलित है,

तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या ऐसे सदस्य को, आदेश द्वारा, पद से हटा सकेगा ।]

[1][**6. अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि** – (1) अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करेगा ।

(2) सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक अपना पद धारण करेगा तथा पांच वर्ष की और अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति का पात्र होगा :

परन्तु कोई भी सदस्य सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(3) अध्यक्ष या कोई सदस्य, अपने पद पर न रह जाने पर, भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी भी और नियोजन का पात्र नहीं होगा ।]

7. कतिपय परिस्थितियों में सदस्य का अध्यक्ष के रूप में कार्य करना या उसके कृत्यों का निर्वहन – (1) अध्यक्ष की मृत्यु, पदत्याग या अन्य कारण से उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में, राष्ट्रपति, अधिसूचना द्वारा, सदस्यों में से किसी एक सदस्य को अध्यक्ष के रूप में तब तक कार्य करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा जब तक ऐसी रिक्ति को भरने के लिए नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हो जाती ।

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 6 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(2) जब अध्यक्ष छुट्टी पर अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तब सदस्यों में से एक ऐसा सदस्य, जिसे राष्ट्रपति, अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त प्राधिकृत करे, उस तारीख तक अध्यक्ष के कृत्यों का निर्वहन करेगा जिस तारीख को अध्यक्ष अपने कर्तव्यों को फिर से संभालता है ।

[1][**8. अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबन्धन और शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं :

परन्तु अध्यक्ष और किसी सदस्य के वेतन और भत्तों में तथा सेवा के अन्य निबन्धनों और शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।]

9. रिक्तियों आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – आयोग का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी या अविधिमान्य नहीं होगी कि आयोग में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ।

10. प्रक्रिया का आयोग द्वारा विनियमित किया जाना – (1) आयोग का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर होगा, जो अध्यक्ष ठीक समझे ।

[2][(2) इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आयोग को अपनी प्रक्रिया के लिए विनियम अधिकथित करने की शक्ति होगी ।]

(3) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय महासचिव द्वारा या इस निमित्त अध्यक्ष द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

11. आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारिवृन्द – (1) केन्द्रीय सरकार, आयोग को, –

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(क) भारत सरकार के सचिव की पंक्ति का एक अधिकारी, जो आयोग का महासचिव होगा ; और

(ख) ऐसे अधिकारी के अधीन, जो पुलिस महानिदेशक की पंक्ति से नीचे का न हो, ऐसे पुलिस और अन्वेषण कर्मचारिवृन्द तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारिवृन्द, जो आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हों,

उपलब्ध कराएगी ।

(2) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, आयोग ऐसे, अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द नियुक्त कर सकेगा, जो वह आवश्यक समझे ।

(3) उपधारा (2) के अधीन नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं ।

अध्याय 3
आयोग के कृत्य और शक्तियां

12. आयोग के कृत्य – आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा, अर्थात् :–

(क) स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा [1][या उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के निदेश पर] उसको प्रस्तुत की गई अर्जी पर, –

(i) मानव अधिकारों का किसी लोक सेवक द्वारा अतिक्रमण या दुष्प्रेरण किए जाने की ; या

(ii) ऐसे अतिक्रमण के निवारण में किसी लोक सेवक द्वारा उपेक्षा की,

शिकायत के बारे में जांच करना ;

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 9 द्वारा अंत:स्थापित ।

(ख) किसी न्यायालय के समक्ष लंबित किसी कार्यवाही में जिसमें मानव अधिकारों के अतिक्रमण का कोई अभिकथन अंतर्वलित है, उस न्यायालय के अनुमोदन से मध्यक्षेप करना ;

[1][(ग) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, जहां व्यक्ति उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरुद्ध या दाखिल किए जाते हैं, वहां के निवासियों के जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए, निरीक्षण करना और उन पर सरकार को सिफारिश करना ;]

(घ) संविधान या मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित रक्षोपायों का पुनर्विलोकन करना और उनके प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना ;

(ङ) ऐसी बातों का, जिनके अंतर्गत आतंकवाद के कार्य हैं, और जो मानव अधिकारों के उपभोग में विघ्न डालती हैं, पुनर्विलोकन करना और समुचित उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(च) मानव अधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अन्तरराष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और उनके प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सिफारिश करना ;

(छ) मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसका संवर्धन करना ;

(ज) समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकारों संबंधी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, संचार विचार, माध्यमों, गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरूकता का संवर्धन करना ;

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 9 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(झ) मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को उत्साहित करना ;

(ञ) ऐसे अन्य कृत्य करना, जो मानव अधिकारों के संवर्धन के लिए आवश्यक समझे जाएं ।

13. जांच से संबंधित शक्तियां – (1) आयोग को, इस अधिनियम के अधीन शिकायतों के बारे में जांच करते समय और विशिष्ट तथा निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को हैं, अर्थात् :–

(क) साक्षियों को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उनकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि अपेक्षित करना ;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ;

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।

(2) आयोग को किसी व्यक्ति से, ऐसे किसी विशेषाधिकार के अधीन रहते हुए, जिसका उस व्यक्ति द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन दावा किया जाए, ऐसी बातों या विषयों पर इत्तिला देने की अपेक्षा करने की शक्ति होगी, जो आयोग की राय में जांच की विषयवस्तु के लिए उपयोगी हों, या उससे सुसंगत हों और जिस व्यक्ति से, ऐसी अपेक्षा की जाए, वह भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 176 और धारा 177 के अर्थ में ऐसी इत्तिला देने के लिए वैध रूप से आबद्ध समझा जाएगा ।

(3) आयोग या आयोग द्वारा इस निमित्त विशेषतया प्राधिकृत कोई ऐसा अन्य अधिकारी, जो राजपत्रित अधिकारी की पंक्ति से नीचे का न हो, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 100 के उपबंधों के, जहां तक वे लागू हों, अधीन रहते हुए, किसी ऐसे भवन या स्थान में, जिसकी बाबत आयोग के पास यह विश्वास करने का कारण है कि जांच की विषयवस्तु से संबंधित कोई दस्तावेज वहां पाया जा सकता है, प्रवेश कर सकेगा और किसी ऐसे दस्तावेज को अभिगृहीत कर सकेगा अथवा उससे उद्धरण या उसकी प्रतिलिपियां ले सकेगा ।

(4) आयोग को सिविल न्यायालय समझा जाएगा और जब कोई ऐसा अपराध, जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 175, धारा 178, धारा 179, धारा 180 या धारा 228 में वर्णित है, आयोग की दृष्टिगोचरता में या उपस्थिति में किया जाता है, तब आयोग, अपराध गठित करने वाले तथ्यों तथा अभियुक्त के कथन को अभिलिखित करने के पश्चात्, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में उपबंधित है, उस मामले को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेज सकेगा जिसे उसका विचारण करने की अधिकारिता है और वह मजिस्ट्रेट जिसे कोई ऐसा मामला भेजा जाता है, अभियुक्त के विरुद्ध शिकायत सुनने के लिए इस प्रकार अग्रसर होगा मानो वह मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 346 के अधीन उसको भेजा गया हो ।

(5) आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में तथा धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा और आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

[1][(6) जहां आयोग ऐसा करना आवश्यक और समीचीन समझता है, वहां वह आदेश द्वारा, उसके समक्ष फाइल की गई या लंबित किसी शिकायत को उस राज्य के राज्य आयोग को, जिससे इस अधिनियम के

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 10 द्वारा अंत:स्थापित ।

उपबंधों के अनुसार निपटारे के लिए शिकायत उद्भूत होती है, अन्तरित कर सकेगा :

परन्तु ऐसी कोई शिकायत तब तक अन्तरित नहीं की जाएगी जब तक कि वह शिकायत ऐसी न हो जिसके संबंध में राज्य आयोग को उसे ग्रहण करने की अधिकारिता न हो ।

(7) उपधारा (6) के अधीन अन्तरित की गई प्रत्येक शिकायत पर राज्य आयोग द्वारा ऐसे कार्रवाई की जाएगी और उसका निपटारा किया जाएगा मानो वह शिकायत आरंभ में उसके समक्ष फाइल की गई हो ।]

14. अन्वेषण – (1) आयोग, जांच से संबंधित कोई अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार की सहमति से केन्द्रीय सरकार या उस राज्य सरकार के किसी अधिकारी या अन्वेषण अभिकरण की सेवाओं का उपयोग कर सकेगा ।

(2) जांच से संबंधित किसी विषय का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए कोई ऐसा अधिकारी या अभिकरण, जिसकी सेवाओं का उपधारा (1) के अधीन उपयोग किया जाता है, आयोग के निदेशन और नियंत्रण के अधीन रहते हुए, –

(क) किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और हाजिर करा सकेगा तथा उसकी परीक्षा कर सकेगा ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश किए जाने की अपेक्षा कर सकेगा ; और

(ग) किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा कर सकेगा ।

(3) धारा 15 के उपबंध किसी ऐसे अधिकारी या अभिकरण के समक्ष जिसकी सेवाओं का उपधारा (1) के अधीन उपयोग किया जाता है किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे आयोग के समक्ष साक्ष्य देने के अनुक्रम में किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के संबंध में लागू होते हैं ।

(4) जिस अधिकारी या अभिकरण की सेवाओं का उपयोग उपधारा (1) के अधीन किया जाता है वह जांच से संबंधित किसी विषय का अन्वेषण करेगा और उस पर आयोग को ऐसी अवधि के भीतर, जो आयोग द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट की जाए, रिपोर्ट देगा ।

(5) आयोग, उपधारा (4) के अधीन उसे दी गई रिपोर्ट में कथित तथ्यों के और निकाले गए निष्कर्षों के, यदि कोई हों, सही होने के बारे में अपना समाधान करेगा और इस प्रयोजन के लिए आयोग ऐसी जांच जिसके अंतर्गत उस व्यक्ति की या उन व्यक्तियों की परीक्षा है, जिसने या जिन्होंने अन्वेषण किया हो या उसमें सहायता की हो, कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

15. आयोग के समक्ष व्यक्तियों द्वारा किए गए कथन – आयोग के समक्ष साक्ष्य देने के अनुक्रम में किसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई कथन, ऐसे कथन द्वारा मिथ्या साक्ष्य देने के लिए अभियोजन के सिवाय, उसे किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के अधीन नहीं करेगा या उसमें उसके विरुद्ध प्रयुक्त नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह तब जब कि ऐसा कथन –

(क) ऐसे प्रश्न के उत्तर में किया जाता है जिसका उत्तर देने के लिए उससे आयोग द्वारा अपेक्षा की जाए ; या

(ख) जांच की विषयवस्तु से सुसंगत है ।

16. उन व्यक्तियों की सुनवाई जिन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है – यदि जांच के किसी अनुक्रम में, –

(क) आयोग किसी व्यक्ति के आचरण की जांच करना आवश्यक समझता है ; या

(ख) आयोग की यह राय है कि जांच से किसी व्यक्ति की ख्याति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है,

तो वह उस व्यक्ति को जांच में सुनवाई और अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर देगा :

परन्तु इस धारा की कोई बात वहां लागू नहीं होगी जहां किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर अधिक्षेप किया जा रहा है ।

अध्याय 4
प्रक्रिया

17. शिकायतों की जांच – आयोग, मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायतों की जांच करते समय, –

(i) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा उसके अधीनस्थ किसी अन्य प्राधिकारी या संगठन से ऐसे समय के भीतर, जो आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, जानकारी या रिपोर्ट मांग सकेगा :

परन्तु, –

(क) यदि आयोग को नियत समय के भीतर जानकारी या रिपोर्ट प्राप्त नहीं होती है तो वह शिकायत के बारे में स्वयं जांच कर सकेगा ;

(ख) यदि जानकारी या रिपोर्ट की प्राप्ति पर, आयोग का यह समाधान हो जाता है कि कोई और जांच अपेक्षित नहीं है अथवा अपेक्षित कार्रवाई संबंधित सरकार या प्राधिकारी द्वारा आरंभ कर दी गई है या की जा चुकी है तो वह शिकायत के बारे में कार्यवाही नहीं कर सकेगा और शिकायतकर्ता को तदनुसार सूचित कर सकेगा ;

(ii) खंड (i) में अंतर्विष्ट किसी बात पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यदि आयोग, शिकायत की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझता है तो जांच आरंभ कर सकेगा ।

[1][**18. जांच के दौरान और जांच के पश्चात् कार्रवाई** – आयोग, इस अधिनियम के अधीन की गई किसी जांच के दौरान और उसके पूरा होने पर निम्नलिखित कार्रवाई कर सकेगा, अर्थात् :–

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(क) जहां जांच से किसी लोक सेवक द्वारा मानव अधिकारों का अतिक्रमण या मानव अधिकारों के अतिक्रमण के निवारण में उपेक्षा या मानव अधिकारों के अतिक्रमण का उत्प्रेरण प्रकट होता है, तो वहां वह संबंधित सरकार या प्राधिकारी को –

(i) शिकायतकर्ता या पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुंब के सदस्यों को ऐसा प्रतिकर या नुकसानी का संदाय करने की सिफारिश कर सकेगा, जो आयोग आवश्यक समझे ;

(ii) संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन के लिए कार्यवाहियां आरंभ करने या कोई अन्य समुचित कार्रवाई करने के लिए, सिफारिश कर सकेगा, जो आयोग ठीक समझे ;

(iii) ऐसी अन्य कार्रवाई करने की सिफारिश कर सकेगा, जिसे वह ठीक समझे ;

(ख) उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय को ऐसे निदेश, आदेश या रिट के लिए जो, वह न्यायालय आवश्यक समझे, अनुरोध करना ;

(ग) जांच के किसी प्रक्रम पर संबद्ध सरकार या प्राधिकारी को पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुंब के सदस्यों को ऐसी तत्काल अन्तरिम सहायता मंजूर करने की, जो आयोग आवश्यक समझे, सिफारिश करना ;

(घ) खंड (ङ) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जांच रिपोर्ट की प्रति अर्जीदार या उसके प्रतिनिधि को उपलब्ध कराना ;

(ङ) आयोग अपनी जांच रिपोर्ट की एक प्रति अपनी सिफारिशों सहित, संबंधित सरकार या प्राधिकारी को भेजेगा और संबंधित सरकार या प्राधिकारी, एक मास की अवधि के भीतर या ऐसे और समय के भीतर, जो आयोग अनुज्ञात करे, रिपोर्ट पर अपनी टीका-टिप्पणी आयोग को भेजेगा जिसके अन्तर्गत उस पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई है ;

(च) आयोग, संबंधित सरकार या प्राधिकारी की टीका-टिप्पणी सहित, यदि कोई हो, अपनी जांच रिपोर्ट तथा आयोग की सिफारिशों पर संबंधित सरकार या प्राधिकारी द्वारा की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई को प्रकाशित करेगा ।]

19. सशस्त्र बलों की बाबत प्रक्रिया – (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, आयोग, सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायतों के बारे में कार्रवाई करते समय, निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाएगा, अर्थात् :–

(क) आयोग स्वप्रेरणा से या किसी अर्जी की प्राप्ति पर, केन्द्रीय सरकार से रिपोर्ट मांग सकेगा ;

(ख) रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात्, आयोग, यथास्थिति, शिकायत के बारे में कोई कार्यवाही नहीं करेगा या उस सरकार को अपनी सिफारिशें कर सकेगा ।

(2) केन्द्रीय सरकार, सिफारिशों पर की गई कार्रवाई के बारे में आयोग को तीन मास के भीतर या ऐसे और समय के भीतर जो आयोग अनुज्ञात करे, सूचित करेगी ।

(3) आयोग, केन्द्रीय सरकार को की गई अपनी सिफारिशों तथा ऐसी सिफारिशों पर, उस सरकार द्वारा की गई कार्रवाई सहित अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करेगा ।

(4) आयोग, उपधारा (3) के अधीन प्रकाशित रिपोर्ट की प्रति, अर्जीदार या उसके प्रतिनिधि को उपलब्ध कराएगा ।

20. आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें – (1) आयोग, केन्द्रीय सरकार को और संबंधित राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अत्यावश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को आयोग की सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हों, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 5
राज्य मानव अधिकार आयोग

21. राज्य मानव अधिकार आयोगों का गठन – (1) कोई राज्य सरकार, इस अध्याय के अधीन राज्य आयोग को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए और सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए एक निकाय का गठन कर सकेगी जिसका नाम ..... (राज्य का नाम) मानव अधिकार आयोग होगा ।

[1][(2) राज्य आयोग ऐसी तारीख से, जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है ;

(ख) एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, या राज्य में जिला न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, और जिसे जिला न्यायाधीश के रूप में कम से कम सात वर्ष का अनुभव है ;

(ग) एक सदस्य, जो ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किया जाएगा जिन्हें मानव अधिकारों से संबंधित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है ।]

(3) एक सचिव होगा, जो राज्य आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और वह राज्य आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा, जो राज्य आयोग उसे प्रत्यायोजित करे ।

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 12 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(4) राज्य आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे ।

(5) कोई राज्य आयोग केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों की बाबत मानव अधिकारों के अतिक्रमण किए जाने की जांच कर सकेगा :

परन्तु यदि किसी ऐसे विषय के बारे में आयोग द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी अन्य आयोग द्वारा पहले से ही जांच की जा रही है तो राज्य आयोग उक्त विषय के बारे में जांच नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि जम्मू-कश्मीर मानव अधिकार आयोग के संबंध में, यह उपधारा ऐसे प्रभावी होगी मानो "केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों की बाबत" शब्द और अंकों के स्थान पर "जम्मू-कश्मीर राज्य को यथा लागू संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों की बाबत और उन विषयों की बाबत जिनके संबंध में उस राज्य के विधान-मंडल को विधियां बनाने की शक्ति है" शब्द और अंक रख दिए गए हों ।

[1][(6) दो या दो से अधिक राज्य सरकारें, राज्य आयोग के अध्यक्ष या सदस्य की सहमति से, यथास्थिति, ऐसे अध्यक्ष या सदस्य को साथ-साथ अन्य राज्य आयोग का सदस्य नियुक्त कर सकेंगी यदि ऐसा अध्यक्ष या सदस्य ऐसी नियुक्ति के लिए सहमति देता है :

परन्तु उस राज्य की बाबत जिसके लिए, यथास्थिति, सामान्य अध्यक्ष या सदस्य या दोनों नियुक्त किए जाने हैं इस धारा के अधीन की गई प्रत्येक नियुक्ति धारा 22 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट समिति की सिफारिशें अभिप्राप्त करने के पश्चात् की जाएगी ।]

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 12 द्वारा अंत:स्थापित ।

22. राज्य आयोग के अध्यक्ष और [1][सदस्यों] की नियुक्ति – (1) राज्यपाल अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा अध्यक्ष और [1][सदस्यों] को नियुक्त करेगा :

परन्तु इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात् की जाएगी, जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात् :–

(क) मुख्य मंत्री – अध्यक्ष ;

(ख) विधान सभा का अध्यक्ष – सदस्य ;

(ग) उस राज्य के गृह विभाग का भारसाधक मंत्री – सदस्य ;

(घ) विधान सभा में विपक्ष का नेता – सदस्य :

परन्तु यह और कि जहां किसी राज्य में विधान परिषद् है वहां उस परिषद् का सभापति और उस परिषद् में विपक्ष का नेता भी समिति के सदस्य होंगे :

परन्तु यह और भी कि उच्च न्यायालय का कोई आसीन न्यायाधीश या कोई आसीन जिला न्यायाधीश, संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् ही नियुक्त किया जाएगा अन्यथा, नहीं ।

(2) राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य की कोई नियुक्ति, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि [1][उपधारा (1) में निर्दिष्ट समिति में कोई रिक्ति है] ।

23. [2][राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य का त्यागपत्र और हटाया जाना – [(1) राज्य आयोग का अध्यक्ष या कोई सदस्य राज्यपाल को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित सूचना द्वारा अपना पद त्याग सकेगा ।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 13 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(1क) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य को केवल साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर किए गए राष्ट्रपति के ऐसे आदेश से उसके पद से हटाया जाएगा, जो उच्चतम न्यायालय को, राष्ट्रपति द्वारा निर्देश किए जाने पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जांच पर वह रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् किया गया है कि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसे सदस्य को ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाए ।]

(2) [1][उपधारा (1क)] में किसी बात के होते हुए भी, यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई [1][सदस्य] –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है ; या

(ख) अपनी पदावधि में अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

(ग) मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ; या

(ङ) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दण्डादिष्ट किया जाता है जिसमें राष्ट्रपति की राय में नैतिक अधमता अंतर्ग्रस्त है,

तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या किसी [1][सदस्य] को, आदेश द्वारा, पद से हटा सकेगा ।

[2][**24. राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि** – (1) अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करेगा ।

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 15 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(2) सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक अपना पद धारण करेगा तथा पांच वर्ष की और अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति का पात्र होगा :

परन्तु कोई भी सदस्य सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(3) अध्यक्ष या कोई सदस्य, अपने पद पर न रह जाने पर, किसी राज्य की सरकार के अधीन या भारत सरकार के अधीन किसी भी और नियोजन का पात्र नहीं होगा ।]

25. कतिपय परिस्थितियों में सदस्य का अध्यक्ष के रूप में कार्य करने या उसके कृत्यों का निर्वहन – (1) अध्यक्ष की मृत्यु, पदत्याग या अन्य कारण से उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में, राज्यपाल, अधिसूचना द्वारा, सदस्यों में से किसी एक सदस्य को अध्यक्ष के रूप में तब तक कार्य करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा जब तक ऐसी रिक्ति को भरने के लिए नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हो जाती ।

(2) जब अध्यक्ष छुट्टी पर अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तब सदस्यों में से एक ऐसा सदस्य, जिसे राज्यपाल, अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त प्राधिकृत करे, उस तारीख तक अध्यक्ष के कृत्यों का निर्वहन करेगा जिस तारीख को अध्यक्ष अपने कर्तव्यों को फिर से संभालता है ।

[1][**26. राज्य आयोगों के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें** – (1) अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबन्धन और शर्तें ऐसी होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु अध्यक्ष या किसी सदस्य के वेतन और भत्तों में तथा सेवा के अन्य निबन्धनों और शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।]

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 16 द्वारा प्रतिस्थापित ।

27. राज्य आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारिवृन्द – (1) राज्य सरकार, आयोग को, –

(क) राज्य सरकार के सचिव की पंक्ति से अनिम्न पंक्ति का एक अधिकारी, जो राज्य आयोग का सचिव होगा ; और

(ख) ऐसे अधिकारी के अधीन, जो पुलिस महानिरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, ऐसे पुलिस और अन्वेषण कर्मचारिवृन्द तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारिवृन्द, जो राज्य आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हों,

उपलब्ध कराएगी ।

(2) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, राज्य आयोग, ऐसे अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द नियुक्त कर सकेगा, जो वह आवश्यक समझे ।

(3) उपधारा (2) के अधीन नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तें ऐसी होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

28. राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें – (1) राज्य आयोग, राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अत्यावश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्टें प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) राज्य सरकार, राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को राज्य आयोग की सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हों, जहां राज्य विधान-मंडल दो सदनों से मिलकर बनता है वहां प्रत्येक सदन के समक्ष, या जहां ऐसा विधान-मंडल एक सदन से मिलकर बनता है वहां उस सदन के समक्ष, रखवाएगी ।

29. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से संबंधित कतिपय उपबंधों का राज्य आयोगों को लागू होना – धारा 9, धारा 10, धारा 12, धारा

13, धारा 14, धारा 15, धारा 16, धारा 17 और धारा 18 के उपबंध राज्य आयोग को लागू होंगे और वे निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे, अर्थात् :–

(क) "आयोग" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे राज्य आयोग के प्रति निर्देश हैं ;

(ख) धारा 10 की उपधारा (3) में, "महासचिव" शब्द के स्थान पर "सचिव" शब्द रखा जाएगा ;

(ग) धारा 12 के खंड (च) का लोप किया जाएगा ;

(घ) धारा 17 के खंड (i) में से "केन्द्रीय सरकार या किसी" शब्दों का लोप किया जाएगा ।

अध्याय 6
मानव अधिकार न्यायालय

30. मानव अधिकार न्यायालय – मानव अधिकारों के अतिक्रमण से उद्भूत होने वाले अपराधों का शीघ्र विचारण करने के लिए उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से अधिसूचना द्वारा, उक्त अपराधों का विचारण करने के लिए, प्रत्येक जिले के किसी सेशन न्यायालय को मानव अधिकार न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगी :

परन्तु इस धारा की कोई बात तब लागू नहीं होगी, जब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन ऐसे अपराधों के लिए –

(क) कोई सेशन न्यायालय पहले से ही विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट है ; या

(ख) कोई विशेष न्यायालय पहले से ही गठित है ।

31. विशेष लोक अभियोजक – राज्य सरकार, प्रत्येक मानव अधिकार न्यायालय के लिए, अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि-व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय

में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए, विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 7
वित्त, लेखा और संपरीक्षा

32. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए, ठीक समझे ।

(2) आयोग, इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी राशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

33. राज्य सरकार द्वारा अनुदान – (1) राज्य सरकार, विधान-मंडल द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् राज्य आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए, ठीक समझे ।

(2) राज्य आयोग, अध्याय 5 के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी राशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

34. लेखा और संपरीक्षा – (1) आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके, विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित, आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, आयोग द्वारा, केन्द्रीय सरकार को प्रतिवर्ष भेजे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को, उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

35. राज्य आयोग के लेखा और संपरीक्षा – (1) राज्य आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो राज्य सरकार, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके, विहित करे ।

(2) राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, राज्य आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के और इस अधिनियम के अधीन राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और राज्य आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित राज्य आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, राज्य आयोग द्वारा, राज्य सरकार को प्रतिवर्ष भेजे जाएंगे और राज्य सरकार, ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को, उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 8
प्रकीर्ण

36. आयोग की अधिकारिता के अधीन न आने वाले विषय – (1) आयोग, किसी ऐसे विषय की जांच नहीं करेगा जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी राज्य आयोग या किसी अन्य आयोग के समक्ष लंबित है ।

(2) आयोग या राज्य आयोग उस तारीख से जिसको मानव अधिकारों का अतिक्रमण गठित करने वाले कार्य का किया जाना अभिकथित है एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी विषय की जांच नहीं करेगा ।

37. विशेष अन्वेषण दलों का गठन – तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां सरकार का यह विचार है कि ऐसा करना आवश्यक है वहां वह एक या अधिक विशेष अन्वेषण दलों का गठन कर सकेगी, जिनमें उतने पुलिस अधिकारी होंगे जितने वह मानव अधिकारों के अतिक्रमणों से उद्भूत होने वाले अपराधों के अन्वेषण और अभियोजन के प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझती है ।

38. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किसी आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के बारे में अथवा किसी रिपोर्ट, कागज-पत्र, या कार्यवाही के केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रकाशन के बारे में कोई भी वाद या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग, राज्य आयोग या उसके किसी सदस्य अथवा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के निदेशाधीन कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

39. सदस्यों और अधिकारियों का लोक सेवक होना – आयोग या राज्य आयोग का प्रत्येक सदस्य और इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का प्रयोग करने के लिए आयोग या राज्य आयोग द्वारा नियुक्त या प्राधिकृत प्रत्येक अधिकारी, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझा जाएगा ।

40. नियम बनाने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 8 के अधीन [1][अध्यक्ष और सदस्यों] के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) वे शर्तें, जिनके अधीन अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द आयोग द्वारा नियुक्त किए जा सकेंगे तथा धारा 11 की उपधारा (3) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन और भत्ते ;

(ग) सिविल न्यायालय की कोई अन्य शक्ति, जो धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (च) के अधीन विहित की जानी अपेक्षित है ;

(घ) वह प्ररूप, जिसमें आयोग द्वारा धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक लेखा विवरण तैयार किए जाने हैं ; और

(ङ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 17 द्वारा प्रतिस्थापित ।

उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उनके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

[1][**40क. भूतलक्षी रूप से नियम बनाने की शक्ति** – धारा 40 की उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन नियम बनाने की शक्ति के अंतर्गत ऐसे नियमों या उनमें से किसी नियम को भूतलक्षी रूप से किसी ऐसी तारीख से बनाने की शक्ति होगी, जो उस तारीख से पूर्वतर न हो जिसको इस अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होती है, किन्तु किसी ऐसे नियम को ऐसा कोई भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाएगा जिससे कि किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसको ऐसा नियम लागू हो सकता हो, हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े ।]

[2][**40ख. आयोग की विनियम बनाने की शक्ति** – (1) इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आयोग, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए विनियम बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन आयोग द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ख) राज्य आयोगों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली विवरणियां और आंकड़े ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 49 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 18 द्वारा अंत:स्थापित ।

(ग) कोई अन्य विषय, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाना है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन आयोग द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

41. नियम बनाने की राज्य सकार की शक्ति – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए, उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 26 के अधीन [1][अध्यक्ष और सदस्यों] के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) वे शर्तें, जिनके अधीन अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द राज्य आयोग द्वारा नियुक्त किए जा सकेंगे तथा धारा 27 की उपधारा (3) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन और भत्ते ;

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 43 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ग) वह प्ररूप, जिसमें धारा 35 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक लेखा विवरण तैयार किए जाने हैं ।

(3) इस धारा के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, जहां राज्य विधान-मंडल के दो सदन हैं वहां प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां ऐसे विधान-मंडल का एक सदन है वहां उस सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

42. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और उस कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हो :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

43. निरसन और व्यावृत्ति – (1) मानव अधिकार संरक्षण अध्यादेश, 1993 (1993 का अध्यादेश संख्यांक 30) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उक्त अध्यादेश के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई, इस अधिनियम के तत्संबंधी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी ।

———————

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण) – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145.00
4.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
5.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
6.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान	2021	कीमत रु. 300/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in